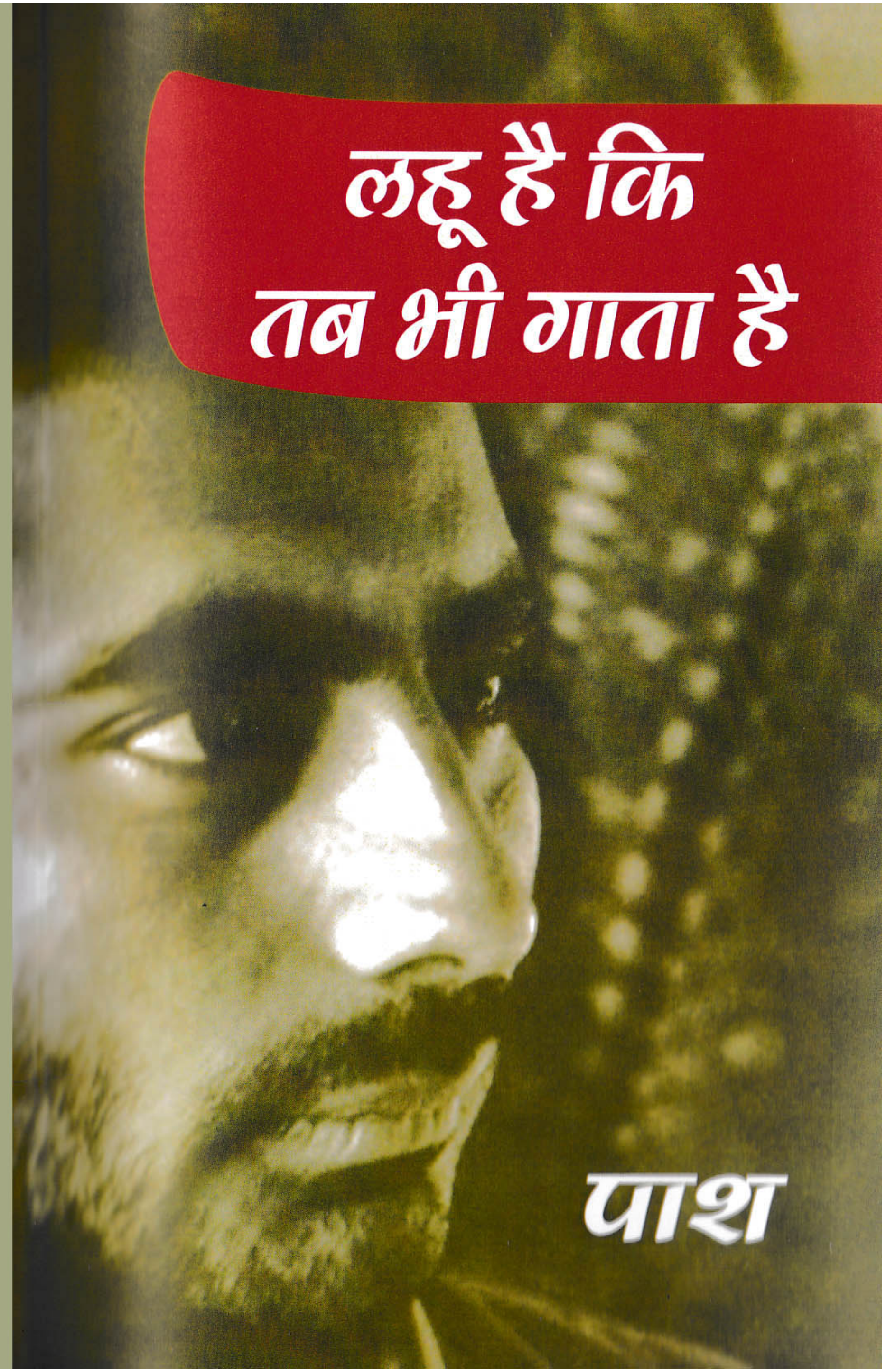
हमारे लहू को आदत है
मौसम नहीं देखता, महफ़िल नहीं देखता
ज़िन्दगी के जश्न शुरू कर लेता है
सूली के गीत छेड़ देता है

शब्द हैं कि पत्थरों पर बह-बहकर घिस जाते हैं
लहू है कि तब भी गाता है

लहू है कि तब भी गाता है



पाश

"कवि होना ऐसा है
जैसे जीवन के प्रति निष्ठा रखना
हर मुश्किल में
मानो खुद अपनी उधेड़कर कोमल चमड़ी
देना लहू उड़ेल अन्य लोगों के दिल में"

पाश को पढ़ते हुए हर बार **सेर्गेई येस्येनिन** की ये पक्तियाँ दिलो-दिमाग़ में कौंधती रहती हैं। कवि – एक योद्धा कवि के रूप में पाश आद्यन्त यही करता रहा। जीवन के प्रति उसकी निष्ठा बरकरार रही और कविताओं के ज़रिये वह लोगों के दिलों में अपना लहू उड़ेलता रहा। यह अप्रत्याशित नहीं कि इसकी क़ीमत उसे अन्ततः अपने लहू से ही चुकानी पड़ी।

कवि मित्र **चमन लाल** के साथ पाश की प्रतिनिधि कविताओं का यह संकलन तैयार करते हुए पाश के पूरे काव्य संसार से एक बार फिर गुज़रने का मौक़ा मिला। हमेशा की तरह यह यात्रा इस बार भी ताज़गी, मशक़्क़त और जद्दोजहद से भरी रही। पाश को पढ़ते हुए बार-बार आप पाठक की अपनी भूमिका भूल जाते हैं और अपने समय और अपने खुद के वजूद से एक बार फिर साक्षात्कार करने लगते हैं और एक ऐसे आत्मसंघर्ष में उतर पड़ते हैं जो अपने किसी घनिष्ठतम मित्र के साथ अन्तरंग ईमानदार संवाद के दौरान ही सम्भव हो सकता है। वह अलगाव और आत्मकेन्द्रण जो आज के कठिन समय में दीमक की तरह आत्माओं को खोखला बना रहा है, पाश की कविताएँ उसे नष्ट करने वाले एक कारगर उपकरण की तरह हर बार हाथ लगती हैं।

और तब अक्सर यह विचार मन में उमड़ता-घुमड़ता रहता है कि मुक्तिबोध की तरह गहन वैचारिकता से ओत-प्रोत न होते हुए भी ऐसा क्यों होता है कि पाश को हर बार पढ़ना उसके कवित्व का और साथ ही अपनी आत्मा की अजेयता का नये सिरे से आविष्कार करने के समान होता है!

... ...

पाश एक ही साथ उतना ही पंजाब की मिट्टी और लोकरंग का कवि था जितना कि मेहनतकश जनता की भारतीयता का कवि था और उतना ही वह अन्तरराष्ट्रीयतावादी भी था।

(पिछले फ़्लैप पर जारी)

लहू है कि तब भी गाता है

पाश की प्रतिनिधि कविताएँ

लहू है कि तब भी गाता है

प्रतिनिधि कविताएँ

पाश

सम्पादन
चमनलाल
कात्यायनी

अनुवाद
चमनलाल

परिकल्पना प्रकाशन
लखनऊ

ISBN 978-81-89760-42-7

पहला संस्करण : 23 मार्च 1998
चौथा पुनर्मुद्रण : जनवरी 2020

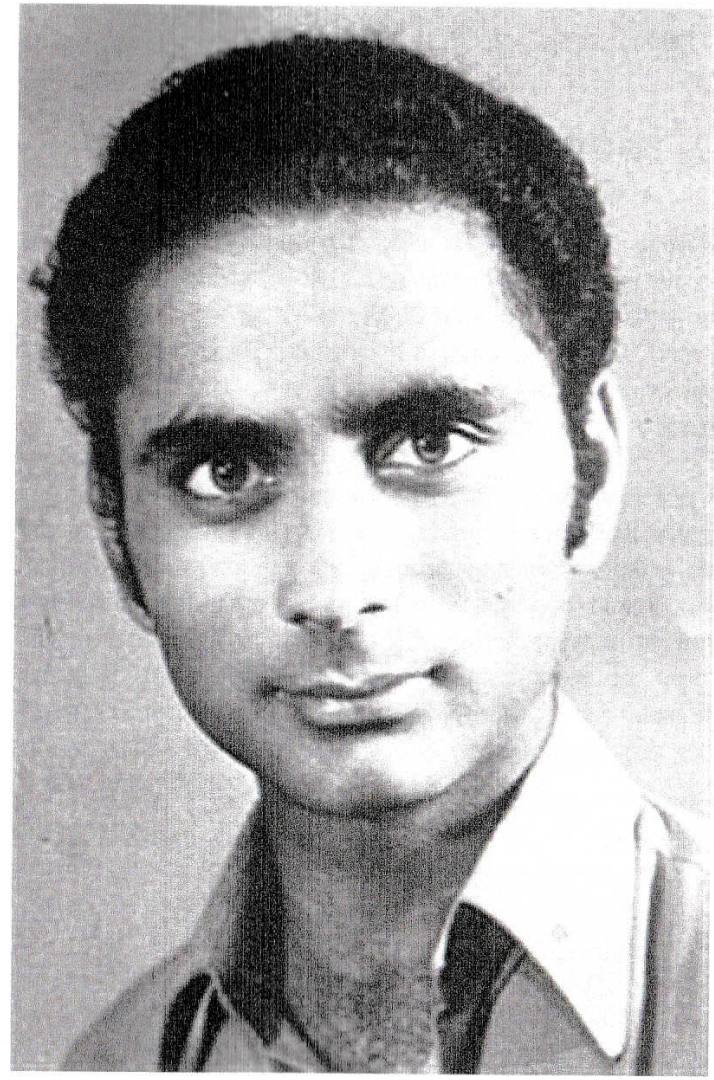
परिकल्पना प्रकाशन
(**राहुल फ़ाउण्डेशन** का एक इम्प्रिण्ट)
69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड,
निशातगंज, लखनऊ-226 006 द्वारा प्रकाशित

कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फ़ाउण्डेशन द्वारा टाइपसेटिंग

आवरण : रामबाबू

मुख्य वितरक : **जनचेतना**, डी-68, निरालानगर, लखनऊ 226020
फ़ोन : 0522-4108495, ईमेल : janchetna.books@gmail.com
वेबसाइट : janchetnabooks.org

LAHU HAI KI TAB BHI GATA HAI Pash ki pratinidhi kavitayen
edited by **Chaman Lal & Katyayani**



पाश
9 सितम्बर 1950 - 23 मार्च 1988

पाश : क्रान्तिकारी कविता की विरासत

हिन्दी में पाश का पहला काव्य संकलन 'बीच का रास्ता नहीं होता' शीर्षक से पाश की शहादत से ठीक एक वर्ष बाद 23 मार्च 1989 को छप गया था। उस समय यही पाश की कविताओं का प्रतिनिधि चयन था। पाश की कविता का दूसरा संग्रह 'समय, ओ भाई समय' 1995 में ही छपकर आया। इन दोनों संकलनों में पाश की पूरी कविता शामिल है। अत: इन दोनों संकलनों में से चुनकर पाश का एक नया प्रतिनिधि संकलन आना ज़रूरी था, इसीलिए पाश की कविताओं का प्रस्तुत संकलन तैयार किया गया है।

यह संकलन इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है कि इसमें एक क्रान्तिकारी कवि ने पाश की कविता के चयन में अपनी धरोहर के रूप में अपने पूर्ववर्ती कवि से आत्मिक साक्षात्कार किया है। इसलिए कात्यायनी ने क्रान्तिकारी कविता के अंग के रूप में पाश की कविता को जिस तरह समझा और 'प्लेस' किया है उसमें और कुछ न जोड़ते हुए यह आशा करता हूँ कि पाश की कविता का यह चयन साहित्य के सुधी पाठकों के साथ-साथ जनतांत्रिक संघर्षों से जुड़े मज़दूर, किसान, स्त्री, विद्यार्थी, दलित या ट्रेड यूनियन कार्यकर्ताओं में अपनी कविता की आँच से, जनतांत्रिक संघर्षों की अन्तिम जीत का ओजमयी विश्वास पुख़्ता करने में प्रेरक भूमिका निभायेगा।

चमन लाल

पाश को फिर से पढ़ते हुए

"कवि होना ऐसा है
जैसे जीवन के प्रति निष्ठा रखना
हर मुश्किल में
मानो ख़ुद अपनी उधेड़कर कोमल चमड़ी
देना लहू उड़ेल अन्य लोगों के दिल में"

पाश को पढ़ते हुए हर बार सेर्गेई येस्येनिन की ये पक्तियाँ दिलो-दिमाग़ में कौंधती रहती हैं। कवि – एक योद्धा कवि के रूप में पाश आद्यन्त यही करता रहा। जीवन के प्रति उसकी निष्ठा बरक़रार रही और कविताओं के ज़रिये वह लोगों के दिलों में अपना लहू उड़ेलता रहा। यह अप्रत्याशित नहीं कि इसकी क़ीमत उसे अन्ततः अपने लहू से ही चुकानी पड़ी।

कवि मित्र चमन लाल के साथ पाश की प्रतिनिधि कविताओं का यह संकलन तैयार करते हुए पाश के पूरे काव्य संसार से एक बार फिर गुज़रने का मौक़ा मिला। हमेशा की तरह यह यात्रा इस बार भी ताज़गी, मशक्क़त और जद्दोजहद से भरी रही। पाश को पढ़ते हुए बार-बार आप पाठक की अपनी भूमिका भूल जाते हैं और अपने समय और अपने ख़ुद के वजूद से एक बार फिर साक्षात्कार करने लगते हैं और एक ऐसे आत्मसंघर्ष में उतर पड़ते हैं जो अपने किसी घनिष्ठतम मित्र के साथ अन्तरंग ईमानदार संवाद के दौरान ही सम्भव हो सकता है। वह अलगाव और आत्मकेन्द्रण जो आज के कठिन समय में दीमक की तरह आत्माओं को खोखला बना रहा है, पाश की कविताएँ उसे नष्ट करने वाले एक कारगर उपकरण की तरह हर बार हाथ लगती हैं।

और तब अक्सर यह विचार मन में उमड़ता-घुमड़ता रहता है कि मुक्तिबोध की तरह गहन वैचारिकता से ओत-प्रोत न होते हुए भी ऐसा क्यों होता है कि पाश को हर बार पढ़ना उसके कवित्व का और साथ ही अपनी आत्मा की अजेयता का नये सिरे से आविष्कार करने के समान होता है!

बहुत सोचने के बाद पाश की कविता की इस लगातार मौजूद ताज़गी और

नयेपन का स्रोत मुझे यहाँ नज़र आता है कि ये कविताएँ अपने उस समय के गहरे इतिहास-बोध की कविताएँ हैं जो पूरी दुनिया और हमारे देश के स्तर पर एक विचित्र क़िस्म का, जटिल क़िस्म का संक्रमण-काल रहा है। विगत क़रीब चौथाई शताब्दी का समय हमारे देश में क्रान्तिकारी उभार, उसके ठहराव और फिर बिखराव, भारतीय सामाजिक-राजनीतिक परिदृश्य पर आये अहम बदलावों तथा धार्मिक कट्टरपन्थ के उभार और फैलाव का दौर रहा है। इस पूरे दौर की इन्दराजी पाश के कविता-जगत में गहरी सूझबूझ के साथ और सान्द्र रचनात्मक आवेग के साथ हुई है।

पाश की काव्य-यात्रा लगभग बीस वर्षों के दौरान कई मोड़ों और घुमावों से होकर गुज़री, पर उसकी कविताओं में गहन वैचारिकता के गुरुत्व के साथ भावनाओं के आवेग का संश्लेषण लगातार मौजूद रहा। पाश की कविताएँ इसीलिए गहरे अर्थों में राजनीतिक कविताएँ हैं। अत्यन्त गहरे और इतिहास-दृष्टि सम्पन्न मानवीय सरोकारों के साथ पाश अपने समय की राजनीतिक घटनाओं पर विवेकसम्मत टिप्पणियाँ करता है। अपना आलोचनात्मक विवेक खोकर घटनाओं की आशु-प्रतिक्रिया या सतही जुमलेबाज़ी के स्तर पर वह कभी नहीं उतरता। उसकी कविताएँ, चाहे वे एक क्रुद्ध युवा आवेग वाली शुरू की कविताएँ हों या बाद की गम्भीर प्रतिकारी क्षोभभरी कविताएँ – स्थितियों की तर्कातीत, अनुभवाश्रित आलोचना नहीं बल्कि द्वन्द्वात्मक तर्कपूर्ण आलोचना प्रस्तुत करती हैं।

पाश के पहले संकलन 'लौहकथा' की पहली ही कविता 'भारत' राष्ट्रवाद की बुर्जुआ अन्धराष्ट्रवादी परिभाषा के समान्तर मेहनतकश जनता की देशभक्ति की अवधारणा प्रस्तुत करती है। इस संग्रह की अधिकांश कविताओं में अपने समय का सम्पूर्ण ताप, सम्पूर्ण दबाव और सम्पूर्ण संघात अंकित है। यह नक्सलबाड़ी किसान-उभार का दौर था। ग़ौर करने की बात है कि इस दौर में हिन्दी कविता अभी अराजकतावादी विद्रोह के दायरे से बाहर निकलने के लिए संघर्ष कर रही थी और उसमें क्रान्तिकारी वाम का जो नया तेवर पैदा हुआ था, उसमें मध्यवर्गीय अतिवामपन्थ की नारेबाज़ी का स्वर बना हुआ था। पाश के प्रथम संकलन की कविताओं में ही हमें विद्रोही कविता का एक नया सौन्दर्य-विधान भी निर्मित होता हुआ दिखायी देता है जो लोक संस्कृति और परम्परा में गहरे बसी हुई जनसंग ऊष्मा से अपने को ऊर्जस्वी बना रहा था।

1974 में 'उड्डदे बाजाँ मगर' प्रकाशित हुआ जिसमें 'उड़ते बाजों के पीछे' और 'हम लड़ेंगे साथी' जैसी प्रसिद्ध कविताएँ शामिल थीं। इस संग्रह की 'हाथ' कविता को बिना किसी झिझक के नाज़िम हिकमत की 'तुम्हारे हाथ' कविता के समकक्ष रखा जा सकता है। 'तूफ़ान कभी मात नहीं खाते' क्रान्तिकारी आन्दोलन की असफलता पर फूले नहीं समाने वाली बुर्जुआ शक्तियों के साथ ही वामपन्थी राजनीति की संशोधनवादी धारा पर भी परोक्ष प्रहार करती है।

पाश के इस दूसरे संकलन ने उस कठिन दौर के वस्तुगत एवं मनोगत यथार्थ को काव्यात्मक सत्य में ढालने के साथ ही पाश को पंजाब के बाहर पूरे देश के स्तर पर एक मँजी हुई क़लम वाले योद्धा कवि के रूप में स्थापित किया।

'साडे समियाँ विच' संकलन 1978 में प्रकाशित हुआ। इस दौर की कविताओं में समकालीन समय का काव्यात्मक दस्तावेज़ तैयार करते हुए पाश की क़लम अधिक गहराई में उतरते, अधिक संजीदा ढंग से चीज़ों पर सोचते हुए दिखायी देती है। विचारों का घनत्व और गुरुत्व बढ़ गया है, पर पहले का भावनात्मक आवेग भी कम नहीं हुआ है।

संग्रह की पहली ही कविता की जो पंक्तियाँ चुनावी दलदल में धँसे संशोधनवादियों पर चोट कर रही थीं, वे आज और भी प्रासंगिक हो उठी हैं जब क्रान्तिकारी वामपन्थी शिविर के तमाम धड़े भी संसदीय राजनीति और अर्थवादी मज़दूर राजनीति के श्मशान में बुर्जुआ प्रेत जगाने के तांत्रिक अनुष्ठानों में लगे हुए हैं –

> *"यह शर्मनाक हादसा हमारे ही साथ होना था*
> *कि दुनिया के सबसे पवित्र शब्दों ने*
> *बन जाना था सिंहासन की खड़ाऊँ*
> *मार्क्स का सिंह -जैसा सिर*
> *दिल्ली की भूल-भुलैयों में मिमियाता फिरता*
> *हमें ही देखना था*
> *मेरे यारो, यह कुफ़्र हमारे ही समयों में होना था।"*

पाश की श्रृंखलाबद्ध लम्बी कविता 'कामरेड से बातचीत' पाश की चिन्तन-प्रक्रिया और रचना-प्रक्रिया के विकास का एक अहम मुकाम है जहाँ खड़ा होकर वह न सिर्फ़ उस क्रान्तिकारी धारा के सकारात्मक-नकारात्मक पक्षों की काव्यात्मक समीक्षा करता नज़र आता है, बल्कि ईमानदार, प्रतिबद्ध मध्यवर्ग की नियति, दुविधा और द्वन्द्व को भी उकेरने की कोशिश करता है और इन सबके साथ सबसे अहम बात यह कि वह अभिव्यक्ति के नये आयामों की खोज की चुनौती से यहाँ टकराता हुआ दिखायी देता है।

निस्सन्देह क्रान्तिकारी वामपन्थी आन्दोलन की जिन कमज़ोरियों की

ओर यह कविता इंगित करती है, उसके कारणों की जो भावाकुल समझ इस कविता-शृंखला से छनती नज़र आती है, उससे पूरी तरह सहमत होना तो सम्भव नहीं है। पर एक बात जो निर्विवाद है, वह यह कि पाश यहाँ फिर भी 'आउटसाइडर' की तरह कमेण्ट नहीं करता, उसकी व्यथा और क्षोभ के स्वर गहरे सरोकारों और चिन्ताओं की उपज हैं। इसकी व्यथा में जो निराशा के स्वर झलकते हैं, वह निराशा उसी हद तक एक फ़ौरी भाव के रूप में है जितना कि एक कवि के लिए ज़रूरी है और एक राजनीतिक कार्यकर्ता के लिए भी।

पिछले दिनों, आज के कठिन हालात पर अपनी प्रतिक्रिया एक कवि राजनीतिक कार्यकर्ता ने एक कविता के रूप में लिखी। वह कविता सुनते समय हठात् मुझे पाश की कविता-शृंखला 'कामरेड से बातचीत' की याद आयी। वह कविता इस प्रकार थी –

साथ है जीने का सबब
ओ मेरे साथियो!
उम्मीदें और मंसूबे
बाँटा किये हम
बची रहीं फिर भी कुछ दूरियाँ।
राहों के नक़्शों और सफ़र की स्कीमों में भी
काफ़ी कुछ साझा रहा
तमाम नाइत्तेफ़ाकियों के बाद भी।
मगर हम सबकी हैं
अपनी अलग-अलग कुछ उदासियाँ
और कुछ मायूसियाँ
और अपनी कुछ अलग-अलग
तनहा उनींदी रातें फिर भी।
इन्हें भी बाँट लें क्या?
सच से सदमा न लगे,
इसके लिए नाउम्मीद होना भी
सीखना होता है
और कभी-कभी अकेला हो जाना भी।
जैसे भी हो
कुछ अपनी उदासियों और मायूसियों की भी
हिफ़ाज़त का चाव करें।
इनको भी होना है साथ-साथ
जैसेकि हर चीज़ के साथ
उसका दूसरा पहलू
या जैसेकि काम पर जाते दिहाड़ी मज़दूर की पोटली में
रोटी के साथ तीखी हरी मिर्च और प्याज के कुछ टुकड़े।
आख़िर चन्द दिनों की तो बात नहीं।
सफ़र है यह जो
पूरी ज़िन्दगी का।
यूँ साथ चलें।"

अस्सी के दशक में राज्यसत्ता और खालिस्तानी आतंकवादियों के दोहरे फ़ासिस्ट दबाव में पंजाब ने एक बार फिर जो झेला, वह उपनिवेशवादी दमन के गुज़रे हुए दौरों को भी पीछे छोड़ देने वाला था। इस बीहड़ दौर में पाश ने 'धर्मदीक्षा के लिए विनयपत्र' और 'सबसे ख़तरनाक' जैसी दस्तावेज़ी राजनीतिक कविताएँ लिखीं।

पाश की अन्तिम प्रकाशित कविता 'सबसे ख़तरनाक' उन लोगों का मुँह बन्द करने लायक़ पुख़्ता सबूत है जो यह कहा करते हैं कि पाश बाद के दौर में मायूस हो चला था।

पाश का क्रान्तिकारी मानवतावाद अन्तिम साँस तक सलामत था। अन्तिम साँस तक वह जीवन, संघर्ष, सृजन और सौन्दर्य का गायक बना रहा, सच्चाई का मेनिफ़ेस्टो पेश करता रहा, बग़ावत का ऐलान करता रहा, परजीवी शोषक-शासक वर्गों को चुनौती देता रहा, भगोड़ों को दुत्कारता रहा और यथास्थितिवाद के मुँह पर थूकता रहा।

नाज़िम हिकमत ने एक बार कहा था, 'अगर कोई रचनाकार कई देशों की जनता तक तेज़ी से पहुँचना चाहता है और बेहतर समझे जाने की आकांक्षा रखता है तो उसके लिए कम्युनिस्ट होना ज़रूरी है। बहुत ज़्यादा ज़रूरी है। लेकिन इतना ही काफ़ी नहीं है। कवि के लिए प्रतिभाशाली होना और मानवता के भविष्य सम्बन्धी गानों के बारे में, मैत्री और शान्ति के बारे में, प्रेम और घृणा के बारे में भावबोध और शैली दोनों ही क्षेत्रों में अपना मौलिक योगदान देना भी ज़रूरी है।"

पाश अन्त तक कम्युनिज़्म के प्रति विश्वासी रहा और जीवन के बहुस्तरीय द्वन्द्वों की पूरी अर्थवत्ता को आत्मसात् करके कविता लिखने के प्रति आग्रही भी।

पाश आज पंजाब और पंजाबी का नहीं, पूरे भारत का कवि है और सभी

भारतीय भाषाओं में पढ़ा जाता है। हमें विश्वास है कि दुनिया की जिस भाषा में भी उसका अनुवाद प्रस्तुत किया जायेगा, वहाँ की जनता उसे अपने कवियों की क़तार में शामिल कर लेगी। पाश कम्युनिज़्म और जनता के साथ ही कविता के भविष्य के प्रति भी अन्त तक आस्थावान रहा और उसके बारे में भी वही कहा जा सकता है जो कभी नाज़िम हिकमत के बारे में पाब्लो नेरुदा ने कहा था। उन्होंने कहा था : "... अमानवीय पीड़ा झेलते हुए भी नाज़िम कहते हैं – 'मैं कविता के भविष्य पर विश्वास करता हूँ।' ऐसे कई रहस्य जो लोगों को अभी जानने हैं, इन शब्दों में थरथरा रहे हैं।"

पाश एक ही साथ उतना ही पंजाब की मिट्टी और लोकरंग का कवि था जितना कि मेहनतकश जनता की भारतीयता का कवि था और उतना ही वह अन्तरराष्ट्रीयतावादी भी था। इन अर्थों में वह लोर्का की परम्परा से भी जुड़ता था और नाज़िम हिकमत और पाब्लो नेरुदा की धारा से भी। पाश की कविता पंजाब में मध्यकालीन गुरुओं की संघर्ष परम्परा से लेकर बब्बर खालसा आन्दोलन, ग़दर पार्टी और भगतसिंह और उनके साथियों के इतिहास से जुड़कर विकसित हुई थी। उसमें हीर-रांझा, सोहनी-महिवाल आदि की लोकगाथाओं के उद्दाम मानवीय प्यार की गहराइयाँ भी थीं और किसानी जीवन और किसान संघर्षों का लोकरंग भी था। उसकी बिम्बावली इसी ज़मीन से उपजी थी, पर वह जितनी पंजाबी थी, उतनी ही भारतीय भी और उतनी ही 'इण्टरनेशनलिस्ट' भी।

पाश की कविताओं में निस्सन्देह विचारों के धरातल पर अन्तरविरोध भी है, पर इन अन्तरविरोधों को 1947 के बाद के पचास वर्षों के भारतीय समाज के संक्रमणशील ढाँचे के अन्तरविरोधों तथा क्रान्तिकारी आन्दोलन के अन्तरविरोधों के साथ रखकर ही समझा जा सकता है और इनके प्रतिबिम्बन के रूप में ही समझा जा सकता है। निर्णायक बात यह है कि मूलत: और मुख्यत: पाश जन के पक्ष में खड़ा है, भविष्य के पक्ष में खड़ा है, युयुत्सा और जिजीविषा के पक्ष में खड़ा है। पाश समग्रता में अपने समकालीनों और आने वाली पीढ़ियों को ज़िन्दगी और कविता के निचोड़ के तौर पर यह धरोहर सौंपता है। प्रख्यात रूसी नाटककार स्तानिस्लाव्स्की ने एक बार कहा था, "सोने की खनक की तरह मैं आने वाली पीढ़ियों को अपनी मेहनत, अपनी तलाशें और अभाव, अपनी खुशियाँ और निराशाएँ नहीं बल्कि केवल वह मूल्यवान अयस्क पिण्ड ही दे सकता हूँ, जो मैंने पाया है।" यदि कोई पूछता तो पाश भी शायद ऐसा ही कुछ कहता। या कम से कम उसका कृतित्व हमें यही संकेत देता है।

पाश को पढ़ते समय बार-बार मन में यह प्रश्न उठता था कि उसकी अपनी जो एक शैलीगत विशिष्टता है, उसकी पहचान किस रूप में की जा सकती है? इसका उत्तर ढूँढ़ने में मुझे एक हद तक मायकोवस्की ने मदद की। कविता की रचना-प्रक्रिया विषयक अपने प्रसिद्ध लेख में वे लिखते हैं : "लय कविता की मूल शक्ति तथा मूल ऊर्जा है। इसकी व्याख्या नहीं की जा सकती, उसकी चुम्बक या विद्युत के प्रभाव की तरह केवल चर्चा ही की जा सकती है। चुम्बकत्व या विद्युत ऊर्जा के रूप हैं। कई कविताओं, यहाँ तक कि कवि के पूरे कृतित्व में एक ही लय हो सकती है, लेकिन इससे उसका कृतित्व एक जैसा नहीं हो जाता, क्योंकि लय, निरूपण में इतनी कठिन और जटिल होती है कि कवि अपनी अनेक मुख्य कृतियों में भी इसका पूरा उपयोग करने में असमर्थ रह सकता है।"

पाश की कविताओं की भी एक अपनी लय है जो पंजाबी लोक साहित्य की वाचिक परम्परा और वहाँ के जनसंघर्षों के सुदीर्घ इतिहास की लोक-स्मृतियाँ के साथ ही वहाँ की मिट्टी, वहाँ की नदियों, वहाँ के नृत्यों-गीतों आदि से रची हुई है। लेकिन इसके साथ ही पाश की प्रगतिधर्मिता में पूरे भारतीय जन की स्मृति, परम्परा और समकालीन जीवन की गति का द्वन्द्व भी है और पूरी दुनिया के लड़ते हुए लोगों के बिरादराना रिश्तों की बुनावट भी। पाश की कविताओं का उद्दाम, विद्रोही क्रान्तिकारी रोमैण्टिसिज़्म (स्वच्छन्दतावाद) इन्हीं संघटक अवयवों से निर्मित होता है और इसी रूप में उनका सौन्दर्यलोक एक नया रूपाकार ग्रहण करता है।

पिछले क़रीब दस वर्षों के भीतर पंजाब की क्रान्तिकारी राजनीति और क्रान्तिकारी वामपन्थी कविता की धारा में भी काफ़ी ठहराव आया है। बहुतेरे लोग आन्दोलन की चुनौतियों से जूझने के नाम पर बौद्धिक बाज़ीगरी, अकादमिक मशक़्क़त और शब्दों की जुगाली में मशगूल होकर "अपनी बिगड़ी सँवारने" में लग गये हैं। कुछ ऐसे भी हैं जो आज भी रुटीनी क़वायद में लगे हुए हैं।

साहित्य की दुनिया में भी अवसरवाद का बोलबाला है। लोक राग गाने वाले देह राग गा रहे हैं। रूपवाद का प्रभाव मार्क्सवादियों पर भी पर्याप्त है और 'पोस्टमॉडर्निज़्म' की फ़ैशनपरस्ती भी चालू है। प्रगतिशीलता और प्रतिगामिता की विभाजक रेखा को धूमिल करने की कोशिशें भी जारी हैं और सत्ताश्रित सुरक्षित वामपन्थी बनते जाने की बेशर्मी भी। ऐसे में पंजाब की क्रान्तिकारी वामपन्थी कविता को भी आज एक नयी करवट लेनी है और आज के कठिन समय के गर्भ में जो विस्फोट पल रहा है, उसकी साहित्य में इन्दराजी करनी है। पाश की परम्परा को आज आगे विस्तार देने के लिए एक नयी शुरुआत की ज़रूरत है। महज़ यादगार के रस्मी जलसों से आगे बढ़ने का समय एक बार फिर एकदम

हमारे सामने है।

भगतसिंह के बारे में अपनी एक टिप्पणी के अन्त में पाश ने लिखा था, "जिस दिन उसे फाँसी लगी, उसकी कोठरी से लेनिन की किताब मिली थी जिसका एक पन्ना मोड़ा हुआ था। पंजाब की जवानी को उसके आख़िरी दिन के मोड़े हुए पन्ने से आगे बढ़ाना है।"

ख़ालिस्तानियों की गोली से शहीद होने से पहले पाश भी ज़िन्दगी और शायरी की जद्दोजहद की किताब का एक पन्ना मोड़ा हुआ छोड़ गया था। पंजाब के और पूरे भारत के प्रतिबद्ध कवियों को उसी मोड़े हुए पन्ने से आगे बढ़ना है।

कात्यायनी

क्रम

सबसे ख़तरनाक

मेहनत की लूट सबसे ख़तरनाक नहीं होती
पुलिस की मार सबसे ख़तरनाक नहीं होती
ग़द्दारी-लोभ की मुट्ठी सबसे ख़तरनाक नहीं होती

बैठे-बिठाये पकड़े जाना – बुरा तो है
सहमी-सी चुप में जकड़े जाना – बुरा तो है
पर सबसे ख़तरनाक नहीं होता

कपट के शोर में
सही होते हुए भी दब जाना – बुरा तो है
किसी जुगनू की लौ में पढ़ना – बुरा तो है
मुट्ठियाँ भींचकर बस वक़्त निकाल लेना – बुरा तो है
सबसे ख़तरनाक नहीं होता

सबसे ख़तरनाक होता है
मुर्दा शान्ति से भर जाना
न होना तड़प का सब सहन कर जाना
घर से निकलना काम पर
और काम से लौटकर घर जाना
सबसे ख़तरनाक होता है
हमारे सपनों का मर जाना

सबसे ख़तरनाक वह घड़ी होती है
आपकी कलाई पर चलती हुई भी जो
आपकी निगाह में रुकी होती है
सबसे ख़तरनाक वह आँख होती है

जो सबकुछ देखती हुई भी जमी बर्फ़ होती है
जिसकी नज़र दुनिया को मुहब्बत से चूमना भूल जाती है
जो चीज़ों से उठती अन्धेपन की भाप पर ढुलक जाती है
जो रोज़मर्रा के क्रम को पीती हुई

एक लक्ष्यहीन दुहराव के उलटफेर में खो जाती है
सबसे ख़तरनाक वह चाँद होता है
जो हर हत्याकाण्ड के बाद
वीरान हुए आँगनों में चढ़ता है
पर आपकी आँखों को मिर्चों की तरह नहीं गड़ता है

सबसे ख़तरनाक वह गीत होता है
आपके कानों तक पहुँचने के लिए
जो मरसिए पढ़ता है
आतंकित लोगों के दरवाज़ों पर
जो गुण्डे की तरह अकड़ता है

सबसे ख़तरनाक वह रात होती है
जो ज़िन्दा रूह के आसमानों पर ढलती है
जिसमें सिर्फ़ उल्लू बोलते और हुआँ-हुआँ करते गीदड़
हमेशा के अँधेरे बन्द दरवाज़ों-चौगाठों पर चिपक जाते हैं

सबसे ख़तरनाक वह दिशा होती है
जिसमें आत्मा का सूरज डूब जाये
और उसकी मुर्दा धूप का कोई टुकड़ा
आपके जिस्म के पूरब में चुभ जाये

मेहनत की लूट सबसे ख़तरनाक नहीं होती
पुलिस की मार सबसे ख़तरनाक नहीं होती
ग़द्दारी-लोभ की मुट्ठी सबसे ख़तरनाक नहीं होती।

[सम्भवतः अपूर्ण रह गयी एक लम्बी कविता का अंश]

बेदख़ली के लिए विनयपत्र

मैंने उम्रभर उसके ख़िलाफ़ सोचा और लिखा है
अगर उसके अफ़सोस में पूरा देश ही शामिल है
तो इस देश से मेरा नाम ख़ारिज कर दें

मैं ख़ूब जानता हूँ नीले सागरों तक फैले हुए
इस खेतों, खानों, भट्ठों के भारत को –
वह ठीक इसी का साधारण-सा एक कोना था
जहाँ पहली बार
जब दिहाड़ी मज़दूर पर उठा थप्पड़ मरोड़ा गया
किसी के खुरदुरे हाथों में
ठीक वही वक़्त था
जब इस क़त्ल की साज़िश रची गयी
कोई भी पुलिस नहीं खोज पायेगी इस साज़िश की जगह
क्योंकि ट्यूबें सिर्फ़ राजधानी में जगमगाती हैं
और खेतों, खानों व भट्ठों का भारत बहुत अँधेरा है

और ठीक इसी सर्द अँधेरे में होश सँभालने पर
जीने के साथ-साथ
पहली बार जब इस जीवन के बारे में सोचना शुरू किया
मैंने ख़ुद को इस क़त्ल की साज़िश में शामिल पाया
जब भी वीभत्स शोर का ख़ुरा खोज मिटाकर
मैंने टर्राते हुए टिड्डे को ढूँढ़ना चाहा
अपनी पूरी दुनिया को शामिल देखा है
मैंने हमेशा ही उसे क़त्ल किया है
हर परिचित की छाती में ढूँढ़कर
अगर उसके क़ातिलों को इस तरह सड़कों पर देखा जाना है

तो मुझे भी मिले बनती सज़ा
मैं नहीं चाहता कि सिर्फ़ इस आधार पर बचता रहूँ
कि भजनलाल बिशनोई को मेरा पूरा पता मालूम नहीं

इसका जो भी नाम है – गुण्डों की सल्तनत का
मैं इसका नागरिक होने पर थूकता हूँ
मैं उस पायलट की
चालाक आँखों में चुभता भारत हूँ
हाँ, मैं भारत हूँ चुभता हुआ उसकी आँखों में
अगर उसका अपना कोई खानदानी भारत है
तो मेरा नाम उसमें से अभी ख़ारिज कर दो।

['समता' (पंजाबी) जनवरी 1985 में प्रथम प्रकाशित]

धर्म-दीक्षा के लिए विनयपत्र

मेरा एक ही बेटा है धर्मगुरु!
आदमी बेचारा सिर पर रहा नहीं
तेरे इस तरह गरजने के बाद
आदमी तो दूर-दूर तक नहीं बचे
अब सिर्फ़ औरतें हैं या शाकाहारी दोपाये
जो उनके लिए अन्न कमाते हैं
धर्मगुरु, तुम सर्वकला-सम्पन्न हो!
तुम्हारा एक मामूली-सा तेवर भी
अच्छे-ख़ासे परिवारों को बाड़े में बदल देता है
हर कोई दूसरे को कुचलकर
अपनी गर्दन तीसरे में घुसेड़ता है
लेकिन धर्मगुरु, मेरी तो एक ही गर्दन है –
मेरे बच्चे की...
और आदमी बेचारा सिर पर रहा नहीं

मैं तुम्हारे बताये हुए इष्ट ही पूजूँगी
मैं तुम्हारे पास किये हुए भजन ही गाऊँगी
मैं दूसरे सभी धर्मों को फ़िज़ूल कहूँगी
लेकिन धर्मगुरु, मेरी एक ही ज़बान बची है –
मेरे बच्चे की...
और आदमी बेचारा रहा नहीं

मैं पहले बहुत पगलायी रही हूँ अब तक
मेरे परिवार का जो धर्म होता था
मेरा उस पर भी कभी ध्यान नहीं गया
मैं परिवार को ही धर्म मानने का कुफ़्र करती रही हूँ

मैं पगली सुन-सुनाकर, पति को ही ईश्वर कहती रही हूँ
मेरे जाने तो घर के लोगों की मुस्कुराहट और त्योरी ही
स्वर्ग-नरक रहे –
मैं शायद कलियुग की बीट थी धर्मगुरु!

तुम्हारी गरज से उठी धर्म की जयकार से
मेरे से बिल्कुल उड़ गया है कुफ़्र का कोहरा
मुझ मुई का अब कोई अपना सच न दिखेगा
मैं तेरे सच को ही एकमात्र सच माना करूँगी...
मैं औरत बिचारी तेरे जाँबाज़ शिष्यों के सामने हूँ भी क्या
किसी भी उम्र में तेरी तलवार से कम ख़ूबसूरत रही हूँ
किसी भी रौ में तुम्हारे जलाल से फीकी रही हूँ
मैं तो थी ही नहीं
बस तुम ही तुम हो धर्मगुरु!

मेरा एक ही बेटा है धर्मगुरु!
वैसे अगर सात भी होते
वे तुम्हारा कुछ न कर सकते थे
तेरे बारूद में ईश्वरीय सुगन्ध है
तेरा बारूद रातों को रौनक बाँटता है
तेरा बारूद रास्ता भटकों को दिशा देता है
मैं तुम्हारी आस्तिक गोली को अर्घ्य दिया करूँगी

मेरा एक ही बेटा है धर्मगुरु!
और आदमी बेचारा सिर पर रहा नहीं।

[हस्तलिखित पत्रिका 'हाक' के अंक 17 से]

कुएँ*

कुएँ अब बहुत थोड़े बचे हैं
लेकिन वे बिल्कुल अकेले-से जहाँ भी हैं
अँधेरे से सुरक्षित नहीं हैं
जो उनमें प्यास के बहाने उतरता है
और मौत भर देता है
सबसे भोले-भाले पंछियों के अण्डों में

फ़सलों के लिए बेकार होने के बाद
कुएँ अब बहुत थोड़े-से बचे हैं
उनकी ख़ास ज़रूरत नहीं है 'भागों भरी' धरती को
लेकिन अँधेरे को उनकी ज़रूरत है
किसी भी गुटकती उड़ान के ख़िलाफ़
अँधेरा उन्हें मोर्चे के लिए इस्तेमाल करता है

कुएँ अब बेशक थोड़े हैं
रोज़ शंख की गूँज से डरती नींद में
मौत की श्लाघा करते हुए भजनों की तलाश में
और अतीत के गुण गाती चिंघाड़ों में
लेकिन अभी भी काफ़ी हैं कुएँ
उनमें पगलाया अँधेरा अभी चिंघाड़ता है
दुआ के लिए उठते हाथों की हथेलियाँ जो कुओं का सृजन करती हैं
सबूते-इन्सान को निगलने के लिए

---

* 'कुएँ' शीर्षक पाश की एक लम्बी कविता के कुछ अंश। 'कुएँ' शब्द का प्रयोग यहाँ आतंकवादियों के प्रतिक्रियावादी विचारों के प्रतीक-रूप में हुआ है।

सिर्फ़ उसके अन्दर का अँधेरा काफ़ी है
इन कुओं में तिलमिलाता फनियर अँधेरा
किसी भी वक्ष के भीतर खिली रोशनी की साँस खींच लेता है
कुएँ तुम्हें मृत सदियों से जोड़ते हैं
कुएँ तुम्हें गूँज के नशे से लगाकर
अपने ज़ख़्मों को गाना सिखाते हैं
कुएँ नहीं चाहते कि धुल जाये आपकी स्मृति से
खोपों[1] के जुतने का दृश्य
वस्तु या मशीन नहीं
अब कुएँ मुकम्मिल फ़िलासफ़ी हैं
कुएँ तो चाहते हैं उनके संग जुड़ी हर भयावहता
आपके भीतर पीछे की ओर गिड़ती रहे

कुएँ आपके साथ बसों में सफ़र करते हैं
उनके भीतर का अँधेरा आदमी की भाषा छीन
सिर्फ़ मिमियाना सिखाता है
कुएँ आपकी छातियों में सरसराते हैं
शवयात्रा से लौटते हुए जब आप में
बच जाने की कृतज्ञता गाती है
बचाव का आख़िरी युद्ध लड़ता अँधेरा
अब बेहद ख़ूँख़ार हो चुका है
बचाव का आख़िरी युद्ध लड़ता अँधेरा
हर चीज़ बेधते हुए
आपकी जगमगाती दुनिया के आरपार निकलना चाहता है
आपके बोलों की चमक में रिसने के लिए
अँधेरा अपने चोर अड्डों समेत अब बेहद तरल हो चुका है
इस तरल अँधेरे के ख़िलाफ़
अब आप पहले की तरह नहीं लड़ सकते
कोई सुविधाजनक और अनचाही ठण्डी लड़ाई

1. आँखों ढँके बैलों का जुतना

इतने तरल अँधेरे के ख़िलाफ़
आपका सुविधामय अस्तित्व बेहद नाकाफ़ी है
इतने तरल अँधेरे के बिल्कुल पड़ोस में जीते हुए
आप निहत्थे नहीं चल सकते।

[हस्तलिखित पत्रिका 'हाक' (1982) से]

सपने

सपने
हर किसी को नहीं आते
बेजान बारूद के कणों में
सोई आग को सपने नहीं आते
बदी के लिए उठी हुई
हथेली के पसीने को सपने नहीं आते
शेल्फ़ों में पड़े
इतिहास-ग्रन्थों को सपने नहीं आते

सपनों के लिए लाज़िमी है
झेलनेवाले दिलों का होना
सपनों के लिए
नींद की नज़र होनी लाज़िमी है

सपने इसलिए
हर किसी को नहीं आते

[पाश की आवाज़ में यह कविता उपलब्ध है, जिसकी टेप पाश के परिवार के पास है। पाश ने यह कविता (सम्भवत: अधूरी) अपने मित्रों – जोगिन्द्र बाहरला आदि की महफ़िल में सुनायी थी। इस कविता को उनकी अब तक प्रकाशित अन्तिम कविता 'सबसे ख़तरनाक' से जोड़कर देखना चाहिए। दोनों कविताओं में एक ही संवेदना दिखायी देती है।]

यारों से बातचीत[1]

नहीं शमशेर, मैं कोई कोलम्बस नहीं
मैं न ही भारत खोजने चला था, न अमेरिका
मेरा तो अपना घर ही न जाने क्यों
आनन्दपुर के क़िले की तरह सुरक्षित न रह सका
और अब तो शुष्क सिरसा[2] ही पार करने से
घर के लोगों की आँखों में उल्लू से उतर आये हैं,
तब से कूंजों की डार से बिम्ब
अतिशयोक्ति-जैसे लगते हैं –

अब तो चिन्ता है शमशेर
मेरे में बस गया परदेस तुम्हारे पंजाब को
कहीं निगल न जाये।
तब तक भय न था
मंजकी[3] वाले जब तक हमारे गाँवों में
बेटी-बेटों का रिश्ता करने से गुरेज़ करते थे
जब तक मालवा 'हरि के पत्तन'[3] से शुरू होता था
जब तक अमृतसर, बाबा बकाला[3]
ढाड्डियों की सारंगी में ही अन्तर्निहित थे
तब तक तो बिल्कुल ही भय न था
जब तक परदेस मेरे जिस्म के बस बाहर-बाहर ही था

अब तो शमशेह जब से सूखी-सी सिरसा पार की है
रास्ते में भले ही कोई चमकौर[3] या सरहिन्द[3] न आये
दोबारा मेल न हो सकेगा
बिखर गये ग़रीब से घर के नक़्शों का
यार मुझे क्या रुकना था माछीवाड़े[3] की झाड़ी में

न जाने कब और कैसे
झाड़ी ख़ुद मेरे भीतर बस गयी
तब से झाड़ी में से हर रोज़ कोई
(तुम दूसरे आलमगीर के लिए न समझ लेना)
मेरी बिना जन्मी बेटी को चिट्ठियाँ लिखता है
उन चिट्ठियों में न कोई राज़ी-ख़ुशी न राम-राम
बस लिखा होता है कि साढ़े तीन हाथ आदमी भी
बड़े मज़े से चौबारे-जैसे हाथी को सीधा कर सकता है
या – धरती नहीं, सिर्फ़ सूरज ही चमक सकते हैं

कभी वह लिखता है : गुड्डो, यह धरती चाहे जितना ज़ोर लगा ले
सूर्य के दबदबे से बिल्कुल न निकल पायेगी
वह दुश्मन शमशेर मेरी बेटी को जाने
कैसी शिक्षा दिलाना चाहता है
उसके ख़तों में बन्दर के आदमी बनने की
आदमी के शिकारी बनने की व्यथा होती है
भला उस न जन्मी मासूम ने
क्या चीन की दीवार गिरानी है
या मिस्र के पिरामिडों की ममियों के
आभूषण उतारने हैं?
मुझे तो जान पड़ता है – यह आदमी कोई बदमाश है
जो मार्को पोलो के घर की तरह
मुझ परदेसी का छिटपुट हड़प लेना चाहता है
शमशेर इसे कुछ कहो यारो
बासी, बिल्ले और लखबीर[4] आपका फ़र्ज़ नहीं क्या?
इस आदमी से कहो
ऐसे ख़त मेरी बेटी को न लिखे
सँभाले रखे, बाद में पुस्तकाकार छपवा ले
इसका कुछ लाभ हो जायेगा –

काश, मैं जानता
अम्बेदकर दवाइयोंवाला डाक्टर नहीं था –

तो मैं परदेस की दवाई लाने से पहले
किसी धन्वन्तरि के पास जाता
मेरी बिना जन्मी गुड्डो के नक़्शों पर
इन बदशगन ख़तों की परछाईं न पड़ती
और परदेस टूटते तारे की लीक की तरह
हमारे दोने में मकई की जगह न उग आता
परदेस जी.टी. रोड पर उलट गये ट्रक की तरह
दोआबे के आमों पर बौर की तरह न उतर आता! –

अब तो शमशेर, तुम्हारा पूर्णसिंह[5] वाला पंजाब
इस परदेस के भीतर सिर्फ़ एक अरदास है
लम्बी झड़ी में रिसती कच्ची दीवार के
कुछ दिन बची रह सकने के लिए
यारो फ़िक्र करते रहना –

इस कंजर परदेस की मार
किसी दिन शंकर[3] के मेले के अखाड़े में न आ थूके
कहीं यह रत्तोवाल[3] से मुलतान[3] की ओर न चल दे
इसका कुछ पता नहीं कब पासले[3] की रामलीला के
मंच पर चढ़कर रावण या राम का भेस धारण कर ले
यार तुम फ़िक्र करना
इस बार चालीस में से एक बचे
तो महल में न मारना
उसके काम आने का अच्छा मौक़ा है
महासिंह बुर्जवाला 'गर भभकियाँ मारना चाहे
तो रोकना नहीं –
हो सकता है 'बन्दा' फिर किसी दिन पहाड़ से उतर आये
कैथल[3] न सही
हर हाल सढ़ौरे[3] तो उसके दल के साथ मिलकर
हम वतन को लौट आयेंगे
फिर मिलेंगे शुष्क सिरसा[2] के बिछुड़े हुए सभी
कोई पौण्ड[6] के धुएँ से

कोई रियाल[6] की रेत से
कोई डालर[6] की चुँधियाहट से
हम आयेंगे क़तारें बाँधकर
इस मोरों, हीरे हिरनों की धरती पर
यारो फ़िक्र करते रहना
यारो फ़िक्र करते रहना।

[1. पाश की स्मृति में पुस्तक से। कवि के कवि-पत्रकार मित्र शमशेर सन्धू को सम्बोधित कविता; 2. नदी का नाम; 3. विभिन्न गाँवों-क़स्बों के नाम; 4. पाश के कुछ दोस्त; 5. सुप्रसिद्ध पंजाबी कवि; 6. इंग्लैण्ड, अरब देशों व अमेरिका की मुद्राएँ।]

23 मार्च

उसकी शहादत के बाद बाक़ी लोग
किसी दृश्य की तरह बचे
ताज़ा मुँदी पलकें देश में सिमटती जा रही झाँकी की
देश सारा बच रहा बाक़ी
उसके चले जाने के बाद
उसकी शहादत के बाद
अपने भीतर खुलती खिड़की में
लोगों की आवाज़ें जम गयीं
उसकी शहादत के बाद
देश की सबसे बड़ी पार्टी के लोगों ने
अपने चेहरे से आँसू नहीं, नाक पोंछी
गला साफ़ कर बोलने की
बोलते ही जाने की मशक की
उससे सम्बन्धित अपनी उस शहादत के बाद
लोगों के घरों में, उनके तकियों में छिपे हुए
कपड़े की महक की तरह बिखर गया
शहीद होने की घड़ी में वह अकेला था ईश्वर की तरह
लेकिन ईश्वर की तरह वह निस्तेज न था।

[डायरी, 23 मार्च, 1982]

उम्मीद रखते हैं...

मुड़-मुड़ जाती है आलम की स्याह चादर
जब आँगन में मुर्ग़े की बाँग छनक उठती है
गीत घोंसलों से निकलकर बाहर आते हैं
और हवा में उकेर देते हैं
शहीदों के अमिट चेहरे, मिट्टी का सबसे सुहावना सफ़र

रोशनी की पहली किरन के साथ
फैलती हैं इस क़द्र तस्वीरें
कि देशभक्त यादगार हॉल की मजबूर चारदीवारी पर
बेपरवाह हँसता है तस्वीरों का आकार

आप जब भी किसी को नमस्कार करते हैं
या हाथ मिलाते हैं
उनके होंठों से तिड़की हुई मुस्कुराहट
आपकी परिक्रमा करती है
आप जब किताबें पढ़ते हैं
तो अक्षरों पर फैल जाते हैं
उनके अमल और शिक्षाएँ

जब समाज के रूखे सीने पर
होता है तलवारों का नृत्य
जब गर्म लहू बकरे बुलाते हैं
या जब पेट की गड़गड़ाहट नारा बनती है
तो कभी रोते, कभी मुस्कुराते हैं – सलीब के गीत
तुम्हारे पास हल का फाल है या खराद की हत्थी
तुम्हारे पैरों में सुबह है या शाम

तुम्हारे अंग-संग तुम्हारे शहीद
आपसे कुछ उम्मीद रखते हैं।

[एक फटी-पुरानी कॉपी से]

मेरी बुलबुल

समय बड़ा कुत्ता है मेरी बुलबुल
बाग़ों से बाहर आ
और सड़कों पर भटकती आत्माओं की ओर देखकर
भौंकना या रोना शुरू कर दे
अब तुम्हारे गीत को सुनकर
कोई भी बीमार अच्छा न होगा
आख़िर यही था न गीत
जो वृक्षों की टहनियों पर ओस की तरह जम गया
और सूर्य के मामूली से टुकड़े से सहमकर
भाप बनकर उड़ गया
समय बड़ा कुत्ता है मेरी बुलबुल –

इसने घड़ी की सुइयों को काट खाया है
दीवारों को दाँत मारे हैं और गमलों पर पेशाब किया है
यह पता नहीं और क्या करता, यदि सरकार के बन्दे इसे पट्टा डालकर
बँगलों के फाटकों पर न बाँधते
मेरी बुलबुल अपने काम अब कुछ और तरह के हैं
अब हम जीने-जैसी हर शर्त को हार चुके हैं
मैं अब आदमी की बजाय घोड़ा बनना चाहता हूँ
इन इन्सानी हड्डियों पर तो काठी बहुत चुभती है
मेरी बराछों में लगाम पीड़ा पहुँचाती है
मेरे इन्सानी पैर ग़ज़ल के पिंगल-जैसी टाप नहीं करते
समय बड़ा कुत्ता है मेरी बुलबुल...

... ...

[अधूरे अंश]

संसद

ज़हरीली शहद की मक्खी की ओर उँगली न करें
जिसे आप छत्ता समझते हैं
वहाँ जनता के प्रतिनिधि बसते हैं

उम्र

आदमी का भी कोई जीना है
अपनी उम्र कव्वे या साँप को बख़्शीश में दे दो

हमारे समयों में

यह सबकुछ हमारे ही समयों में होना था
कि समय ने रुक जाना था थके हुए युद्ध की तरह
और कच्ची दीवारों पर लटकते कैलेण्डरों ने
प्रधानमंत्री की फ़ोटो बनकर रह जाना था

धूप से तिड़की हुई दीवारों के परखचों
और धुएँ को तरसते चूल्हों ने
हमारे ही समयों का गीत बनना था

ग़रीब की बेटी की तरह बढ़ रहा
इस देश के सम्मान का पौधा
हमारे रोज़ घटते क़द के कन्धों पर ही उगना था
शानदार एटमी तजर्बे की मिट्टी
हमारी आत्मा में फैले हुए रेगिस्तान से उड़नी थी

मेरे-आपके दिलों की सड़क के मस्तक पर जमना था
रोटी माँगने आये अध्यापकों के मस्तक की नसों का लहू
दशहरे के मैदान में
गुम हुई सीता नहीं, बस तेल का टिन माँगते हुए
रावण हमारे ही बूढ़ों को बनना था
अपमान वक़्त का हमारे ही समयों में होना था
हिटलर की बेटी ने ज़िन्दगी के खेतों की माँ बनकर
खुद हिटलर का 'डरौना'
हमारे ही मस्तकों में गड़ाना था
यह शर्मनाक हादसा हमारे ही साथ होना था
कि दुनिया के सबसे पवित्र शब्दों ने

बन जाना था सिंहासन की खड़ाऊँ –
मार्क्स का सिंह-जैसा सिर
दिल्ली की भूलभुलैयों में मिमियाता फिरता
हमें ही देखना था
मेरे यारो, यह कुफ़्र हमारे ही समयों में होना था

बहुत दफ़ा, पक्के पुलों पर
लड़ाइयाँ हुईं
लेकिन जुल्म की शमशीर के
घूँघट न मुड़ सके[1]
मेरे यारो, अपने अकेले जीने की ख़्वाहिश कोई पीतल का छल्ला है
हर पल जो घिस रहा
न इसने यार की निशानी बनना है
न मुश्किल वक़्त में रक़म बनना है

मेरे यारो, हमारे वक़्त का एहसास
बस इतना ही न रह जाये
कि हम धीमे-धीमे मरने को ही
जीना समझ बैठे थे
कि समय हमारी घड़ियों से नहीं
हड्डियों के खुरने से मापे गये

यह गौरव हमारे ही समयों को मिलेगा
कि उन्होंने नफ़रत निथार ली
गुज़रते गन्दलाये समुद्रों से
कि उन्होंने बींध दिया पिलपिली मुहब्बत का तेंदुआ
और वह तैरकर जा पहुँचे
हुस्न की दहलीज़ों पर

यह गौरव हमारे ही समयों का होगा
यह गौरव हमारे ही समयों का होना है।

1. तलवारों का रुख़ न मुड़ना

तुम्हारे बग़ैर

तुम्हारे बग़ैर
तुम्हारे बग़ैर मैं बहुत खचाखच रहता हूँ
यह दुनिया सारी धक्कमपेल सहित
बेघर पाश की दहलीज़ें लाँघकर आती-जाती है
तुम्हारे बग़ैर मैं पूरे का पूरा तूफ़ान होता हूँ
ज्वारभाटा और भूकम्प होता हूँ

तुम्हारे बग़ैर
मुझे रोज़ मिलने आते हैं आइंस्टाइन और लेनिन
मेरे साथ बहुत बातें करते हैं
जिनमें तुम्हारा बिल्कुल ही ज़िक्र नहीं होता
मसलन : समय एक ऐसा परिन्दा है
जो गाँव और तहसील के बीच उड़ता रहता है
और कभी नहीं थकता
सितारे जुल्फ़ों में गूँथे जाते
या जुल्फ़ें सितारों में – एक ही बात है
मसलन : आदमी का एक और नाम मेंशेविक है
और आदमी की असलियत हर साँस में बीच को खोजना है
लेकिन हाय-हाय!...
बीच का रास्ता कहीं नहीं होता
वैसे इन सारी बातों से तुम्हारा ज़िक्र ग़ायब रहता है

तुम्हारे बग़ैर
मेरे पर्स में हमेशा ही हिटलर का चित्र परेड करता है
उस चित्र की पृष्ठभूमि में

अपने गाँव की पूरे वीराने और बंजर की पटवार होती है
जिसमें मेरे द्वारा निक्की के ब्याह में गिरवी रखी ज़मीन के सिवा
बची ज़मीन भी सिर्फ़ जर्मनों के लिए ही होती है

तुम्हारे बग़ैर, मैं सिद्धार्थ नहीं – बुद्ध होता हूँ
और अपना राहुल
जिसे कभी जन्म नहीं देना
कपिलवस्तु का उत्तराधिकारी नहीं
एक भिक्षु होता है

तुम्हारे बग़ैर मेरे घर का फ़र्श – सेज नहीं
ईंटों का एक समाज होता है
तुम्हारे बग़ैर सरपंच और उसके गुर्गे
हमारी गुप्त डाक के भेदिये नहीं
श्रीमान् बी.डी.ओ. के कर्मचारी होते हैं
तुम्हारे बग़ैर अवतार सिंह सन्धू महज़ पाश
और पाश के सिवाय कुछ नहीं होता

तुम्हारे बग़ैर धरती का गुरुत्व
भुगत रही दुनिया की तक़दीर होती है
या मेरे जिस्म को खरोंचकर गुज़रते अ-हादसे
मेरा भविष्य होते हैं
लेकिन किन्दर[1]! जलता जीवन माथे लगता है
तुम्हारे बग़ैर मैं होता ही नहीं।

1 पाश के एक मित्र का नाम

अपनी असुरक्षा से

यदि देश की सुरक्षा यही होती है
कि बिना ज़मीर होना ज़िन्दगी के लिए शर्त बन जाये
आँख की पुतली में 'हाँ' के सिवाय कोई भी शब्द
अश्लील हो
और मन बदकार पलों के सामने दण्डवत झुका रहे
तो हमें देश की सुरक्षा से ख़तरा है

हम तो देश को समझे थे घर-जैसी पवित्र चीज़
जिसमें उमस नहीं होती
आदमी बरसते मेंह की गूँज की तरह गलियों में बहता है
गेहूँ की बालियों की तरह खेतों में झूमता है
और आसमान की विशालता को अर्थ देता है

हम तो देश को समझे थे आलिंगन-जैसे एक एहसास का नाम
हम तो देश को समझते थे काम-जैसा कोई नशा
हम तो देश को समझे थे क़ुर्बानी-सी वफ़ा
लेकिन 'गर देश
आत्मा की बेग़ार का कोई कारख़ाना है
'गर देश उल्लू बनने की प्रयोगशाला है
तो हमें उससे ख़तरा है

'गर देश का अमन ऐसा होता है
कि क़र्ज़ के पहाड़ों से फिसलते पत्थरों की तरह
टूटता रहे अस्तित्व हमारा
और तनख़्वाहों के मुँह पर थूकती रहे

क़ीमतों की बेशर्म हँसी
कि अपने रक्त में नहाना ही तीर्थ का पुण्य हो
तो हमें अमन से ख़तरा है

'गर देश की सुरक्षा ऐसी होती है
कि हर हड़ताल को कुचलकर अमन को रंग चढ़ेगा
कि वीरता बस सरहदों पर मरकर परवान चढ़ेगी
कला का फूल बस राजा की खिड़की में ही खिलेगा
अक़्ल, हुक्म के कुएँ पर रहट की तरह ही धरती सींचेगी
मेहनत, राजमहलों के दर पर बुहारी ही बनेगी
तो हमें देश की सुरक्षा से ख़तरा है।

है तो बहुत अजीब

'गर तुम मुकलावे न जातीं, तुम्हें भ्रम रहना था
कि रंगों का अर्थ फूल ही होता है
बुझी हुई राख की गन्ध नहीं होती
तुम्हें मुहब्बत को किसी मौसम का नाम ही समझते रहना था

तुमने शायद सोचा हो –
तुम्हारे किरोशिये से बनाये अक्षर एक दिन बोल उठेंगे
या गन्दलाये पानियों में भीग न सकेंगे
बटन जोड़-जोड़कर बुने हुए बत्तख के पंख
तुमने कभी न सोचा होगा कि मुकलावा[1]
दहेज़ के बर्तनों की खनक में
नूपुर की चुप का बिना कफ़न जलना है
या रिश्तों के सेंक में, रंगों का तिड़क जाना है –
सुरिन्दर कौर[2] को फिर कभी नहीं दीखती
हादसों के इन्तज़ार में बैठी छिन्दो
इस क़दर बन जाती है, महज़ घटनाओं की दीवार
असल में मुकलावा कभी न आनेवाली समझ है
कि किस तरह
कोई भी गाँव
धीरे-धीरे बदल जाता है 'दानाबाद' में
मुकलावा असल में लालसाओं का पिघलकर
चारपाइयों, पीढ़ों, बुहारियों में बदलना है....
है तो बड़ा अजीब कि हथेलियों पर पाले सच को

1. गौना
2. पंजाबी की प्रसिद्ध गायिका

ऐसे ही कच्ची-सी मेंहदी से झिड़क देना
या उजड़ गये मेले के वीरान अखाड़े की
साँय-साँय को साँसों में पिरो लेना
या जोते हुए खेतों में दफ़न
हज़ारों बार कुचली पगडण्डियों को याद करना—

... ...

जब जबकि किनारे पर ही डूब गयी है बटनोंवाली बत्तख
अभी भी हादसों के इन्तज़ार में बैठी है छिन्दो
महज़ घटनाओं की दीवार के उस पार
जो कभी कोई लाँघ न सका
है तो बड़ा अजीब कि मैं जो कुछ नहीं लगता तुम्हारा
दीवार के इधर भी और उधर भी, मरी हुई
और मरने जा रही बत्तखों को उठाये फिरता हूँ!

युद्ध और शान्ति

हम जिन्होंने युद्ध नहीं किया
तुम्हारे शरीफ़ बेटे नहीं हैं ज़िन्दगी!
वैसे हम हमेशा शरीफ़ बनना चाहते रहे
हमने दो रोटियों और ज़रा-सी रजाई के एवज़ में
युद्ध के आकार को सिकोड़ना चाहा
हम बिना शान के फन्दों में शान्ति-सा कुछ बुनते रहे
हम बर्छी की तरह हड्डियों में चुभे सालों को उम्र कहते रहे
जब हर पल किसी अकड़ाये शरीक की तरह सिर पर गरजता रहा
हम सन्दूक़ में छिप-छिपकर युद्ध को टालते रहे

युद्ध से बचने की लालसा में हम बहुत छोटे हो गये
कभी तो थके हुए बाप को अन्नखाऊ बुड्ढे का नाम दिया
कभी चिन्ताग्रस्त बीवी को चुड़ैल का साया कहा
सदैव क्षितिज में नीलामी के दृश्य तैरते रहे
और हम नाज़ुक-सी बेटियों की आँख में आँख डालने से डरते रहे
युद्ध हमारे सिरों पर आकाश की तरह छाया रहा
हम धरती पर खोदे गढ़ों को मोर्चों में बदलने से झिझकते रहे

डर कभी हमारे हाथों पर बेगार बन उग आया
डर कभी हमारे सिरों पर पगड़ी बन सज गया
डर कभी हमारे मनों में सौन्दर्य बनकर महका
डर कभी आत्मा में सज्जनता बन गया
कभी होंठों पर चुगली बनकर बुड़बुड़ाया
ऐ ज़िन्दगी, हम जिन्होंने युद्ध नहीं किया
तुम्हारे बहुत पाखण्डी बेटे हैं
युद्ध से बचने की लालसा ने

हमें लिताड़ दिया है घोड़ों के सुमों के नीचे
हम जिस शान्ति के लिए रेंगते रहे
वह शान्ति बाघों के जबड़ों में
स्वाद बनकर टपकती रही
शान्ति कहीं नहीं होती –
आत्मा में छिपे गीदड़ों का हौंकना ही सबकुछ है

शान्ति –
घुटनों में गर्दन देकर ज़िन्दगी को सपने में देखने की कोशिश है
शान्ति वैसे कुछ नहीं है
भूमिगत साथी से आँख बचा लेने के लिए
सड़क किनारे नाले में झुक जाना ही सबकुछ है
शान्ति कहीं नहीं होती
नारों की गरज से घबराकर
अपनी चीख़ में संगीत के अंश ढूँढ़ना ही सबकुछ है
और शान्ति कहीं नहीं होती

तेल बग़ैर जलती फ़सलें,
बैंक की फ़ाइलों के जाल में कड़कड़ाते गाँव
और शान्ति के लिए फैली बाँहें
हमारे युग का सबसे कमीना चुटकुला है

शान्ति बाँह में चुभी चूड़ी के आँसू जितना ज़ख़्म है
शान्ति बन्द फाटक के पीछे
मरती हुई हवेलियों की हँसी है

शान्ति चौपालों में अपमानित दाढ़ियों की आह है
शान्ति और कुछ नहीं है

शान्ति दुखों और सुखों में बनी सीमा के सिपाही की राइफ़ल है
शान्ति जुगाली करते विद्वानों के मुँह से गिर रही लार है
शान्ति पुरस्कार लेते कवियों की बढ़ी हुई बाजुओं का 'टुण्ड' है

शान्ति मंत्रियों के पहने हुए खद्दर की चमक है
शान्ति और कुछ नहीं है
या शान्ति गाँधी का जाँघिया है
जिसकी तनियों को चालीस करोड़ आदमियों को
फाँसी लगाने के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है
शान्ति माँगने का अर्थ
युद्ध को जिल्लत के स्तर पर लड़ना है
शान्ति कहीं नहीं होती

युद्ध के बग़ैर हम बहुत अकेले हैं
अपने ही आगे दौड़ते हुए हाँफ रहे हैं
युद्ध के बग़ैर बहुत सीमित हैं हम
बस हाथ-भर में ख़त्म हो जाते हैं
युद्ध के बग़ैर हम दोस्त नहीं हैं
झूठी-झुठलायी भावनाओं की कमाई खाते हैं

युद्ध इश्क़ के शिखर का नाम है
युद्ध लहू से मोह का नाम है
युद्ध जीने की गर्मी का नाम है
युद्ध कोमल हसरतों के मालिक होने का नाम है
युद्ध शान्ति की शुरुआत का नाम है
युद्ध में रोटी के हुस्न को
निहारने-जैसी सूक्ष्मता है
युद्ध में शराब को सूँघने-जैसा एहसास है

युद्ध यारी के लिए बढ़ा हुआ हाथ है
युद्ध किसी महबूब के लिए आँखों में लिखा ख़त है
युद्ध गोद में उठाये बच्चे की
माँ के दूध पर टिकी मासूम उँगलियाँ हैं
युद्ध किसी लड़की की पहली
'हाँ' जैसी 'ना' है
युद्ध खुद को मोह-भरा सम्बोधन है

युद्ध हमारे बच्चों के लिए
धारियोंवाली गेंद बनकर आयेगा
युद्ध हमारी बहनों के लिए
कढ़ाई के सुन्दर नमूने लायेगा
युद्ध हमारी बीवियों के स्तनों में
दूध बनकर उतरेगा
युद्ध बूढ़ी माँ के लिए नज़र की ऐनक बनेगा
युद्ध हमारे बुजुर्गों की क़ब्रों पर
फूल बनकर खिलेगा

वक़्त बहुत देर
किसी बेक़ाबू घोड़े की तरह रहा है
जो हमें घसीटता हुआ ज़िन्दगी से बहुत दूर ले गया है
और कुछ नहीं, बस युद्ध ही इस घोड़े की लगाम बन सकेगा
बस युद्ध ही इस घोड़े की लगाम बन सकेगा।

तुम्हें पता नहीं

तुम्हें पता नहीं, मैं शायरी में क्या समझा जाता हूँ
जैसे किसी उत्तेजित मुजरे में
कोई आवारा कुत्ता आ घुसे
तुम्हारी समझ में मैं किसी ख़तरनाक पार्टी के लिए
आधी रात तक लहू जलाये
न जाने क्या लिखता रहता हूँ
तुम्हें पता नहीं मैं कविता के पास कैसे जाता हूँ–
कोई गाँव की सुन्दरी घिस चुके फ़ैशन का नया सूट पहने
बौरायी-सी जैसे शहर की दुकानों पर चढ़ती है...

मैं कविता से माँगता हूँ
तुम्हारे लिए नेल पालिश की शीशी
छोटी बहन के लिए रंगदार कढ़ाईवाला धागा
और बापू के मोतियाबिन्द के लिए दवाई

कविता इस तरह की माँगों को शरारत समझती है
और महीने दर महीने अपने रखवालों को
बेंत के डण्डे
और नरम बटोंवाली बन्दूक़ें देकर भेजती है
रात-बिरात मेरी ओर
जो अपने साथ ले जाते हैं
मेरी मनपसन्द किताबें
आले में रखी छोटी उम्र की फ़ोटो
और घर की सीढ़ियों से गिरकर ज़ख़्मी हुई
मेरी पहली मुहब्बत की उदास रंगों में बिखर गयी चीख़
तुम्हें पता नहीं कि सिपाही मुझे जानते हुए भी
कैसे अजनबी बन जाते हैं

तलाशी ले रहा कोई जाहिल-सा पंजा
कैसे जा झपटता है
मेरे चाँदनी रातों से किये अहदनामे पर
तुम्हें पता नहीं मेरी रीढ़ की हड्डी का पुराना ज़ख़्म
उनके जाने के बाद कैसे टसकने लगता है

तुम्हें पता नहीं वह ख़तरनाक पार्टी क्या करती है
वहाँ स्याह काली रातों में
मुहब्बत का एक उनींदा दस्तावेज़
सोई पड़ी धरती पर फड़फड़ाता है
लगातार कुरेदती हुई हवा के सामने
नंगे सीने खड़े होने का एक सिलसिला है –

वे हथियारों-जैसे आदमी हैं
और आदमियों-जैसे हथियार
असल में न वे आदमी हैं न हथियार
वे हथियारों से आदमी के
टूट रहे याराने की कड़कड़ हैं

असल में वहाँ लोग हैं
दूर कुएँ को जाते रास्ते की रेत-जैसे
जिस पर कई सदियाँ गृहिणियाँ भत्ता[1] उठाये चलती रहीं
सोचती हुई कि शायद कहीं कभी
यहाँ सड़क बन जाये

लेकिन सड़क पर चलने वाले ट्रैक्टर-चालक को
न गृहिणियों का पता होगा
न तारकोल के नीचे बिछी हुई रेत का –
उन्हें साइकल चाहिए
और रोटी की जगह खाने के लिए कोई भी चीज़
तुम्हें पता नहीं मैं पिटे हुए गीदड़ की तरह
क्यों भाग आया हूँ – विलायती अख़बार के सम्पादक के पास से

1. कलेवा

जिसके रट्टनों के बग़ैर हाथ बहुत कोमल थे –
भैंस द्वारा चाटकर साफ़ की गयी नथनी की तरह
लेकिन उसकी कतरी हुई दाढ़ी
जैसे कोई तपती हुई सलाख़ थी
जो आज़ादी की पहली सुबह की तरह
मेरी आँखों में घुस जाने लगी
उसके बैग में तह किये हुए बादलों के थान थे
और कैमरे में लालों का एक बासी हुआ पोखर
मैंने उसकी फ़िएट की डिग्गी में
अपने बचपन में हारे हुए आदमियों की डिब्बी देखी थी
लेकिन उसकी ओर जितनी बार हाथ बढ़ाया
कभी सेहत मंत्री खाँस पड़ा
कभी हरियाणा का आई.जी. हुंकारा
तुम्हें पता नहीं कितना असम्भव था –
उसकी ग़ैर-राजनीतिक राजनीति के
अजगर-जैसे फुत्कारते शब्द-बाग़ों[1] से बचाकर
ख़ुद को
तुम्हारे लिए साबुत ले आना...

वह सम्पादक और वैसे ही हज़ारों लोग
अपनी भद्दी देह पर सवार होकर आते हैं
और गाँव की पगडण्डियों पर
घास से हरी चमक मर जाती है

ये लोग असल में रोशनी के भुनगों-जैसे हैं
जो दीया जलाकर पढ़ रहे बच्चों की नासिकाओं में
मितलाहट का भभूका बनकर चढ़ते हैं
मेरे शब्द उस दीये में
तेल की जगह जलना चाहते हैं
मुझे कविता का इससे अच्छा उपयोग नहीं पता
और तुम्हें पता नहीं
मैं शायरी में क्या समझा जाता हूँ!

1. लफ़्फ़ाज़ी

छन्नी

छन्नी वे लोकड़ियो – छन्नी
रब्ब देवे वे वीरा तैनूँ बन्नी

– पंजाबी का एक प्रसिद्ध लोकगीत

(छन्नी ओ लोगो – छन्नी
ओ भाई, रब्ब तुम्हें दुल्हन दे)

छन्नी तो छन्नी हुई
लेकिन गुड्डिए, तेरे गीतों से
तेरे वीर को दुल्हन न मिलेगी
उसे तो मार जायेगी
बाबुल की कम ज़मीन की परछाईं
उसकी पास की हुई मैट्रिक को
मरियल-से भैंसे चर जायेंगे
और उसके चकलेदार सीने पर
हमेशा ही बिगड़े हुए इंजन की तकावी
चपातियाँ बेलती रहेंगी

धीरे-धीरे हो जायेगी धीमी
उसकी जाँघों के कपोतों की उड़ान
ख़त्म हो जायेगा चोग चावों के भण्डार से –
वह बड़ा छटपटायेगा
जिस दिन पहली बार अफ़ीम की चींटी
उसकी अँतड़ियों पर चलेगी
चौपाल से अपने अमली बनने
की कनसो को वह सूँघ-सूँघकर गुज़रेगा

फिर धीरे-धीरे बदल जायेंगी चौपाल की बातें
और फिरनी से ही लौटने लगेंगे
उसे देखनेवाले
गुड्डिए, दूर क्षितिज की ओर
जहाँ मगरमच्छों के जबाड़े मिलते हैं
नाक की सीध में चलता जायेगा तेरा वीर
तू जिसे दिन समझती है
शिकारियों की मुट्ठी में पकड़े हुए
धागे का सिरा है
और रात कुछ नहीं
डोरी में दी हुई मक्कार ढील के सिवाय
गुड्डिए, अपने तो सिर्फ़ गीत हैं
समय अपना नहीं है

'गर समय अपना होता
तो तुझे ख़ाली कलाइयाँ
ढँक-ढँककर रखने का फ़िकर न होता
अभी तो समय कोई लहू माँगती सुई है
जो पुर तो सकती है
तेरे फूलों का भ्रम बुन रहे पोटे के फूल में
लेकिन सिल नहीं सकती
तेरी कमर से घिसती जा रही कुर्ती को

छन्नी तो छन्नी हुई
लेकिन गुड्डिए, हो सके तो
वीर की शंकाओं को
गीतों के मोह की बाड़ से न घेरना
उसे खोज लेने देना
गले में पड़े हुए रस्से की गाँठ
उसके माथे पर झुक आयी सदियों का कूबड़
कर लेने देना सम्मोंवाली लाठी को सीधा
उसे डाल लेने देना

मज़दूरी के पिडों[1] में निकली साँपों की बाँबियों में हाथ

सिलसिला शायद तेरे कुएँ पर उतरी
पुलिस की धाड़ से चले
या चलते पुर्ज़े पंच के
तिरंगे की तरह लहराते कुल्ले से
या भूकम्पों की तरह दीवारों को कँपकँपाती हुई
इलैक्शन की मोटर से...

सिलसिला कहीं से भी चल सकता है गुड्डिए –
अपने गीतों को जा भिड़ने देना
गन्दी साँसें छोड़ती गालियों के सीने से

फिर एक बार
चौपालों में उसका ज़िक्र छिड़ेगा
जो अँधेरे में उसके क़दमों के आगे
रोशनी की लकीर बनकर चलेगा....
छन्नी तो छन्नी हुई
गड्डिए, हो सके तो वीर की शंकाओं को
बस, गीतों के मोह की बाड़ से न घेरना।

1. टीलों

आज का दिन

लगता है यह सवेर नहीं है
मौत की हथेली पर जमी हुई मुस्कराहट है
रात की रो-रोकर सूजी हुई आँख है
सूर्य-जैसा कुछ कहीं नहीं है

कबूतरों के गुटकने से कुछ भी शुरू नहीं हुआ
शायद आज का दिन बचने नशेड़ी की आह से शुरू हुआ है
बिल्ली गिरा गयी जिसका
भिगोये पोस्त का छन्ना
आज का दिन शायद करमू की सूखती जा रही धरती पर उगा है
जिसके खुरली पर बँधे बैल को
रात में सरकारी साँड़ मार गया था
आज का दिन फटे हुए दूध की चाय-जैसा
विधवा रतनी के गले से मुश्किल से उतरता है
आज का दिन शैदाई हरिकिशन की
गालियों के किनारे लड़खड़ाता चल रहा है
आज का दिन अमरो भंगिन के गले में पहने हुए उतार की तरह
नंगेज की ख़ामोशी तैर रहा है
लगता है आज का दिन किसी मुर्दे का लहू है
या रद्द की गयी वोट की पर्ची है
या कि गाँव की अल्हड़ लड़की के बहुत कम देख सकने वाले
नयनों की बहुत गहरी दृष्टि है
या उदास बूढ़े के
सींक खाये दरवाज़े की चौखट पर लगी हुई टिकटिकी है
या किसी बाँझ औरत का
चौरस्ते में किया हुआ टोना है

आज का दिन किसी ज़ालिम मंत्री का
अनचाहा दफ़्तरी मातम है
या किसी दुर्गन्ध छोड़ते थैले के भीतर
बुझाकर रखा बीड़ी का टुकड़ा है
या शायद
सातवीं में फेल हुई बच्ची की
चुनरी में रखा सूखी आँखों का नीर है
आज का दिन धार्मिक मान्यता का दिन नहीं है

आज का दिन धार्मिक मान्यता का दिन नहीं है
किसी बच्चे की बड़बड़ाती नींद है
आज का दिन तो सँभाल-सँभालकर पाला हुआ आतंक का वृक्ष है
राजनीतिक हिंसा की शृंगारी हुई घोड़ी है
आज का दिन किसी दुश्मन द्वारा
खेतों में दी गयी चुनौती है

आज का दिन किसी ग्रन्थी के शंख बजाने से ख़त्म नहीं होगा
आज का दिन शायद बहुत लम्बा चला जाये
और पंछी सन्ध्या की उड़ान की प्रतीक्षा में थक जायें
आज का दिन शायद बहुत लम्बा चला जाये...

प्रतिबद्धता

हम झूठ-मूठ का कुछ भी नहीं चाहते
जिस तरह हमारी मांसपेशियों में मछलियाँ हैं
जिस तरह बैलों की पीठों पर उभरे
चाबुकों के निशान हैं
जिस तरह क़र्ज़ के काग़ज़ों में
हमारा सहमा और सिकुड़ा हुआ भविष्य है
हम ज़िन्दगी, बराबरी या कुछ भी और
इसी तरह सचमुच का चाहते हैं

जिस तरह सूरज, हवा और बादल
घरों और खेतों में हमारे अंग-संग रहते हैं
हम उसी तरह
हकूमतों, विश्वासों और ख़ुशियों को
अपने साथ-साथ देखना चाहते हैं
ताक़तवरो, हम सबकुछ सचमुच का देखना चाहते हैं
हम उस तरह का कुछ भी नहीं चाहते
जैसे शराब के मुक़दमे में
किसी टाऊट की गवाही होती है
जैसे पटवारी का 'ईमान' होता है
या जैसे किसी आढ़ती की क़सम होती है –

हम चाहते हैं अपनी हथेली पर कोई इस तरह का सच
जैसे गुड़ की पत्त में 'कण' होता है
जैसे हुक़्क़े में 'निकोटिन' होता है
जैसे मिलन के समय महबूब के होंठों पर
मलाई-जैसी कोई चीज़ होती है

हम नहीं चाहते
पुलिस की लाठियों पर टँगी किताबों को पढ़ना
हम नहीं चाहते
फ़ौजी बूटों की टाप पर हुनर का गीत गाना
हम तो वृक्षों पर खनकते संगीत को
अरमानभरे पोरों से छूकर देखना चाहते हैं
आँसू गैस के धुएँ में नमक चाटना
या अपनी ही जीभ पर अपने ही लहू का स्वाद चखना
किसी के लिए भी मनोरंजन नहीं हो सकता
लेकिन
हम झूठ-मूठ का कुछ भी नहीं चाहते
और हम सबकुछ सचमुच का देखना चाहते हैं –
ज़िन्दगी, समाजवाद, या कुछ भी और...

मैं अब विदा लेता हूँ

मैं अब विदा लेता हूँ
मेरी दोस्त, मैं अब विदा लेता हूँ
मैंने एक कविता लिखनी चाही थी
सारी उम्र जिसे तुम पढ़ती रह सकतीं

उस कविता में
महकते हुए धनिये का ज़िक्र होना था
ईख की सरसराहट का ज़िक्र होना था
उस कविता में वृक्षों से चूती ओस
और बाल्टी में चोए दूध पर गाती झाग का ज़िक्र होना था
और जो भी कुछ
मैंने तुम्हारे जिस्म में देखा
उस सबकुछ का ज़िक्र होना था

उस कविता में मेरे हाथों की सख़्ती को मुस्कराना था
मेरी जाँघों की मछलियों ने तैरना था
और मेरी छाती के बालों की नरम शाल में से
स्निग्धता की लपटें उठनी थीं
उस कविता में
तेरे लिए
मेरे लिए
और ज़िन्दगी के सभी रिश्तों के लिए बहुत कुछ होना था मेरी दोस्त

लेकिन बहुत ही बेस्वाद है
दुनिया के इस उलझे हुए नक़्शे से निपटना
और यदि मैं लिख भी लेता
शगनों से भरी वह कविता

तो उसे वैसे ही दम तोड़ देना था
तुम्हें और मुझे छाती पर बिलखते छोड़कर
मेरी दोस्त, कविता बहुत ही नि:सत्व हो गयी है
जबकि हथियारों के नाखून बुरी तरह बढ़ आये हैं
और अब हर तरह की कविता से पहले
हथियारों से युद्ध करना ज़रूरी हो गया है

युद्ध में
हर चीज़ को बहुत आसानी से समझ लिया जाता है
अपना या दुश्मन का नाम लिखने की तरह
और इस स्थिति में
मेरे चुम्बन के लिए बढ़े होंठों की गोलाई को
धरती के आकार की उपमा देना
या तेरी कमर के लहरने की
समुद्र के साँस लेने से तुलना करना
बड़ा मज़ाक़-सा लगना था
सो मैंने ऐसा कुछ नहीं किया
तुम्हें
मेरे आँगन में मेरा बच्चा खिला सकने की तुम्हारी ख़्वाहिश को
और युद्ध के समूचेपन को
एक ही क़तार में खड़ा करना मेरे लिए सम्भव नहीं हुआ
और अब मैं विदा लेता हूँ

मेरी दोस्त, हम याद रखेंगे
कि दिन में लोहार की भट्ठी की तरह तपनेवाले
अपने गाँव के टीले
रात को फूलों की तरह महक उठते हैं
और चाँदनी में पगे हुए 'टोक'[1] के ढेरों पर लेटकर
स्वर्ग को गाली देना, बहुत संगीतमय होता है
हाँ, यह हमें याद रखना होगा क्योंकि
जब दिल की जेबों में कुछ नहीं होता
याद करना बहुत ही अच्छा लगता है

1. गन्ने का रस निकाल लेने के बाद बचा फोकट पदार्थ

मैं इस विदाई के पल शुक्रिया करना चाहता हूँ
उन सभी हसीन चीज़ों का
जो हमारे मिलन पर तम्बू की तरह तनती रहीं
और उन आम जगहों का
जो हमारे मिलने से हसीन हो गयीं
मैं शुक्रिया करता हूँ
अपने सिर पर ठहर जानेवाली
तेरी तरह हल्की और गीतों भरी हवा का
जो मेरा दिल लगाये रखती थी तेरे इन्तज़ार में
रास्ते पर उगे हुए रेशमी घास का
जो तुम्हारी लरजती चाल के सामने हमेशा बिछ जाता था
टीण्डों से उतरी कपास का
जिसने कभी भी कोई उज्र न किया
और हमेशा मुस्कराकर हमारे लिए सेज बन गयी
गन्नों पर तैनात पिद्दियों का
जिन्होंने आने-जानेवालों की भनक रखी
जवान हुए गेहूँ की बल्लियों का
जो हमें बैठे हुए न सही, लेटे हुए तो ढँकती रहीं
मैं शुक्रगुज़ार हूँ, सरसों के नन्हें फूलों का
जिन्होंने कई बार मुझे अवसर दिया
तेरे केशों से पराग केसर झाड़ने का
मैं आदमी हूँ, बहुत कुछ छोटा-छोटा जोड़कर बना हूँ
और उन सभी चीज़ों के लिए
जिन्होंने मुझे बिखर जाने से बचाये रखा
मेरे पास बहुत शुक्राना है
मैं शुक्रिया करना चाहता हूँ

प्यार करना बहुत ही सहज है
जैसे कि जुल्म को झेलते हुए
खुद को लड़ाई के लिए तैयार करना
या जैसे गुप्तवास में लगी गोली से
किसी गुफ़ा में पड़े रहकर
ज़ख़्म के भरने के दिन की कोई कल्पना करे

प्यार करना
और लड़ सकना
जीने पर ईमान ले आना मेरी दोस्त, यही होता है
धूप की तरह धरती पर खिल जाना
और फिर आलिंगन में सिमट जाना
बारूद की तरह भड़क उठना
और चारों दिशाओं में गूँज जाना –
जीने का यही सलीक़ा होता है
प्यार करना और जीना उन्हें कभी न आयेगा
जिन्हें ज़िन्दगी ने बनिया बना दिया

जिस्म का रिश्ता समझ सकना –
ख़ुशी और नफ़रत में कभी भी लकीर न खींचना –
ज़िन्दगी के फैले हुए आकार पर फ़िदा होना –
सहम को चीरकर मिलना और विदा होना –
बड़ा शूरवीरता का काम होता है मेरी दोस्त,
मैं अब विदा लेता हूँ

तुम भूल जाना
मैंने तुम्हें किस तरह पलकों के भीतर पालकर जवान किया
कि मेरी नज़रों ने क्या कुछ नहीं किया
तेरे नक़्शों की धार बाँधने में
कि मेरे चुम्बनों ने कितना ख़ूबसूरत बना दिया तुम्हारा चेहरा
कि मेरे आलिंगनों ने
तुम्हारा मोम-जैसा शरीर कैसे साँचे में ढाला

तुम यह सभी कुछ भूल जाना मेरी दोस्त,
सिवाय इसके
कि मुझे जीने की बहुत लोचा[1] थी
कि मैं गले तक ज़िन्दगी में डूबना चाहता था
मेरे भी हिस्से का जी लेना, मेरी दोस्त,
मेरे भी हिस्से का जी लेना!

1. लालसा

दूतिक भाषा के ख़िलाफ़

जब मैं लड़खड़ाता बिल्कुल तुम्हारे क़दमों में गिरा था
तुम तो बुद्ध बन गये
लेकिन मैं तो अभी भी ज़ख़्मी पंखों से डोल रहा हूँ
मैं मानसरोवर से बहुत दूर किसी सूखे हुए बाग़ से बोल रहा हूँ
कि अब तुम्हें नहीं
कलिंग के मैदान में
आख़िरी साँस ले रहे सैनिक से कहता हूँ
इस तरह क्यों है
कि ज्ञान हमारी गर्दनों में पड़ी रस्सी की मरोड़ ही है
सैनिक, क्यों भला मुक्ति का रास्ता
तुम्हारी और मेरी आख़िरी हिचकी के ही दर से गुज़रता है

गया के वटवृक्ष को चले गये पदचिह्नों को क्या पता नहीं
कि वक़्त मेरी आँखों में बूढ़ा हो रहा है
उनमें मिल ही जायेंगे
यशोधरा के पदचिह्न किसी दिन आकर
फैलता मेरे लिए ही रहेगा हिमालय पर्वत हर पल
हे सैनिक, तुमने तो देखा है
इन नदियों के कभी इधर और कभी उधर फैलते
सिकुड़ते देश को –

और दूर चाँदनी रात के तीसरे पहर से मानसरोवर को
कभी भी पता न चला – आदमी क्यों और कैसे
कभी द्रविड़ और कभी आर्य बना
वह कभी जान न सका कि
क़ुरान शरीफ़ की आयतों और वेदों में कविता के छन्द
क्यों धुआँ बनकर आदमी की नासिका और आँखों में चढ़े?

और मानसरोवर का छोड़ा हुआ जल
कभी न लौटा – इनके किनारे आदमी की इज़्ज़त लूटते
ज्ञान की व्यथा बताने के लिए
सैनिक, मानसरोवर भला क्या जानता है
मैं उसके वाष्प का कतरा
हवा की बाँह में बाँह डाले इस बार आम-सी तफ़रीह के लिए
क्यों नहीं लौटा

मानसरोवर कोई अब्दाली तो नहीं
और न मैं साबिर की तरह धमकी-सा सन्देश लेकर आया था
लेकिन एक बात बताऊँ? – शाहनवाज़ कहीं भी हो
सिर्फ़ एक बिना म्यान चमकती हुई चुप्पी
उसके संवाद के लिए शब्द बन जाती रही है –
और मेरे पंखों में सरसराता
माँ की छातियों से रिसता अमृत
कभी भी सातों में से किसी रंग की छाया में नहीं घुल पाया

और सैनिक, जानते हो?
भाषा अशक्ति की वजह से किस क़द्र बदमाश है
कि ज़ख़्म के लिए 'इतिहास' नाम का शब्द प्रयोग करती है
ज़ख़्म-दर-ज़ख़्म की पीड़ा के लिए 'सभ्यता'
यह शायद उड़ते पंछियों को 'हंस'
और 'मोती' को मटर, मूंग या चावल समझती है
इसे बस यह पता है – मानसरोवर देश नाम की मूर्खता को
निर्मित करने के लिए नदियाँ बहाता है

इसे बस यह पता है – वेदों और आयतों की कविता धुआँ होती है
इसके लिए तो मानसरोवर केवल झील है, सन्नाटा है
इसके लिए तो हरिवल्लभ या तानसेन या गुलाम अली द्वारा
शब्दों को अमूर्त बना ध्वनियों में बदल देना संगीत है
इसके लिए आ रही मौत की आहट में हंस गाने लगते हैं
सैनिक, वैसे तो अजीब-सा लगता है
सहक रहे आदमी को

हंस का कहना
लेकिन यह बदमाशी बस भाषा की है केवल
कि कविता धुआँ बन जाती है

और आदमी अन्धा होकर छींकता हुआ
परेड करता – हुक्म बजाता
और बहादुरी के तमगे लेने के लिए
अपनी धड़कनों से ख़फ़ा हुए सीने को
शैतान के आगे करता है
और शैतान उसमें सोने की कील गड़ाकर
सोने को अनाज, अन्न को वोदका में बदलने के ढंग बताता है
और फिर वोदका इन्सान को गीदड़
और फिर लोमड़ी और फिर बाघ
और बाघों को समाज कर देती है

सैनिक, बताओ भला एक हंस कैसे कहे
कि टालस्टाय बहुत देर से आया था
और असल कहानी
हल चलाते किसान की रोटी उठाने से बहुत पहले से शुरू थी –
हे सैनिक, 'गर ज़रा उठो
तो इस बदमाश भाषा को कलिंग की रणभूमि में ही मरती छोड़
कपिलवस्तु के सिद्धार्थ तक चलें
और शंकराचार्य से मिलते हुए
उस ईस्ट इण्डिया कम्पनी को पूरा ही ज्ञान लौटा दें
तुम बाद में धरती के किसी भी नंगे टुकड़े पर जा बसना
सागर से यह कहे बग़ैर कि वास्तविक इतिहास तो वही है
और मैं मानसरोवर से तुम्हारे नदियों के हाथ सन्देश भेजा करूँगा
जिप्सियों के गीतों-जैसे
रमज़दार आँखों से गिर रहे रब्ब के नूर-जैसे
झरने की रमज़-जैसे सन्देश
सैनिक 'गर ज़रा उठो
सैनिक 'गर ज़रा उठो...!

चिड़ियों का चम्बा[1]

चिड़ियों का चम्बा उड़कर कहीं न जायेगा
ऐसे ही कहीं इधर-उधर बाँधों से घास खोदेगा
रूखी मिस्सी रोटियाँ ढोयेगा
और मैली चुनरियाँ भिगोकर
लुओं से झुलसे चेहरों पर फिरायेगा

चिड़ियों का चम्बा उड़कर कहीं नहीं जायेगा
यों ही कहीं इधर-उधर छिपकर
अकेला-अकेला रोया करेगा
शापित यौवन के मरसिये गाया करेगा

चिड़ियों के चम्बे को ज़रा भी ख़बर न होगी
अचानक कहीं लोहे की चोंचों का जाल
उसके जितने आसमान पर बिछ जायेगा
और लम्बी उड़ान का उसका सपना
उसके मृगनयनों से भयभीत हो जायेगा

चिड़ियों का चम्बा मुफ़्त ही परेशान होता है
बाबुल तो डोली भेजकर
उखड़े दरवाज़े को ईंटें लगवायेगा
और गुड़ियाएँ फाड़कर
पसीने से गले हुए कुर्ते पर पैबन्द लगवायेगा
चिड़ियों के चम्बे को मोह चर्ख़े का ज़रा न सतायेगा

चिड़ियों का चम्बा उड़कर
किसी भी देश न जायेगा

सारी उम्र काँटे चारे के झेलेगा
और सफ़ेद चादर पर लगा
उसकी माहवारी का रक्त उसका मुँह चिढ़ायेगा।

[1. पंजाबी लोकगीत – 'साड्डा चिड़ियाँ दा चम्बा नी, बाबल असाँ उड्ड जाना' ('चिड़ियों दा चम्बा' नौजवान लड़कियों के लिए प्रयुक्त)]

शीर्षकहीन (एक)

समय ओ भाई समय
कुछ तो कह दो
हम तुम्हारे संग हो क्या कुछ करें?
हमारा समय है गुनाहों भरा
कैसे पार जायें हम इस भवजल[1] से?

1. भवसागर

शीर्षकहीन (दो)

बन्द दरवाज़े पर खड़े
सपने में पुन: लौटने की कामना करते लोग
न जीने क़ाबिल और न मरने क़ाबिल ही रहे
हालाँकि सपने में जला रक्त भी ख़ास अपना था
सपने के भीतर या बाहर
सपने और सोच पर भी आपका पूरा-पूरा
वास्तविक अधिकार होता है
क्योंकि यह किसी की ओट से सोच-समझकर दी गयी
बख़्शीश नहीं है

[डायरी, 1982]

शीर्षकहीन (तीन)

जिस दिन तुमने पृथी को जन्म दिया
वह कौन-सा दिन था माँ?
ईश्वर बनकर सभी कैलेण्डरों में
मैं वही दिन कर दूँगा

जिस रात को वे तुम्हारा पृथी ले गये
जिस जगह पर उसे यातनाएँ दीं
उस दिन धरती सुहागिन बन गयी
सूनापन टहक उठा

कहाँ वह बूढ़ी चगल[1]
जिसकी गुण्डा बाँह
कहाँ तुम्हारा कुल
नौ ही बरस का लाल[2]
पृथी तो धरती आकाश
सभी तुम्हारे नाम कर गया
बेअन्ते[3]-जैसे
पैर रखने की जगह तलाश रहे हैं
तुम्हारा कोई क्या कर लेगा
तुम शेर बेटों की माँ हो
तुम्हारा कोई क्या कर लेगा –

[लोकप्रिय छात्र नेता पृथीपालसिंह रन्धावा की हत्या पर]

---

1. नीच
2. पृथीपाल रन्धावा के नौ बरस छात्र नेता रहने की ओर संकेत
3. पृथीपाल रन्धावा का हत्यारा, जिसे बाद में मार दिया गया।

शीर्षकहीन (चार)

जितना शक्तिवर और जैसा भी हो
मेरा तुम्हारे ईश्वर के बग़ैर ही गुज़ारा है
उस आराधना के बग़ैर
जो अच्छे-भले आदमी को
चरणों की धूल में बदल दे
उस शुक्राने के बग़ैर
जिसकी कोई वजह नहीं होती
उस ओट के बग़ैर
जो हमेशा ही ओट-रहित रखती है।
तुम ऐसे क्यों नहीं बन जातीं
जैसे ज़बान से गाये गीत होते हैं
हर बार तुम्हें तख़्ती की तरह क्यों लिखना पड़ता है
मुँहज़ोर सन्ध्याओं के शोर में से
तुम्हारे बोलों को निथार सकना बहुत मुश्किल है
तुम्हारे शंख की घण्टी की तरह लहरों में
टूटती आवाज़ के समान मैं चाहता हूँ
तुम अस्त होते सूर्य का दुख बँटाओ
और ईश्वर के नाम की तरह मेरी रूह में तैरती रहो
देखो मुझे सितारों का सामना करना है
जैसे पराजित होने पर कोई गर्वीला
शत्रु की आँखों में झाँकता है
छोटी-छोटी लौ में
गुम हुई गानी की तरह
मुझे टोह-टोहकर ख़ुद को तलाश करना है।

शीर्षकहीन (पाँच)

थके टूटे बदन को
लेसले दिल के सहारे जोड़ लेते हैं
परेशानी में ज़ख़्मी शाम का
तमतमाया हुआ चेहरा चूम लेते हैं
हम भी होते हैं, हम भी होते हैं

जुगनुओं की तरह पेड़ों में फँसकर भटक जाते हैं
लेकिन हम दहाड़ नहीं सकते
कभी रीं-रीं नहीं करते
हम रोज़ बेचैनी का पौधा चबाते हैं
हम भी होते हैं, हम भी होते हैं

हम धूप में घुल-घुलकर
दिन में रोज़ खपते हैं
अँधेरा सौ कुफ़्र तौले
हमारा अस्तित्व अँधेरे में भी साकार रहता है
हम रातों की रंगीनी का हिस्सा भी बँटायेंगे
हम रात में भी होते हैं
हम हर वक़्त होंगे।

शीर्षकहीन (छह)

ईश्वर न करे कि हम भूल जायें
बर्छी की तरह हड्डियों में धँसे बरसों को
जब हर पल किसी अकड़ाये शरीर की तरह सिर पर गरजता रहा
जब क्षितिज पर
क़र्ज़ से बनी मिसाल से
नीलामी के दृश्य तैरते रहे
जब हम फूल-सी बेटियों की
आँखों में आँखें डालने से सहमे
ईश्वर न करे हम भूल जायें
जब हमें इस्तेमाल किया गया
धमकी भरे भाषण सुनने के लिए
ईश्वर न करे कोई भूल जाये
कैसे धरती के मासूम कपोलों पर
रक्त छिड़का गया
जब चुने हुए विधायक
अपनी बारी के लिए कुत्तों की तरह उत्तेजित होते रहे
और सड़कों पर हड़ताली मज़दूरों का शिकार होता रहा
जब रक्त सनी आँखों को
अख़बारों के पन्ने चिढ़ाते रहे
और असेम्बलियों में हुई ठाठ-बाठ की चर्चा
बंगलौर में सीने छलनी होने की सुर्ख़ी
निगल जाती रही
जब रेडियो साबित रहा
और मगरमच्छ मुख्यमंत्री

पेट में पड़ी लाशों को बेटों की जगह बताता रहा
जब धुन दिये गये शाहकोट[1] की चीख़ों को
एक ठिगने से डी.एस.पी. का ठहाका जाम करता रहा।

1. पंजाब का एक क़स्बा

शीर्षकहीन (सात)

हम ठीक-ठाक हैं, अपना पता देना
पता देना समुद्र के नीचे सोये जहाज़ों का
पता देना सफ़र के शोर का
धुकधुकी का, उस धुकधुकी से रिसती धमक का पता देना
पता देना कि ईश्वर की मौत से
श्रद्धालुओं का क्या बना
(पता देना जिन्होंने ईश्वर क़त्ल किया
उन श्रद्धालुओं का क्या बना)

कुछ भाषा के, कुछ भावनाओं के जो कसाई उलझ पड़े थे
उनमें से कौन ताक़तवर रहा, जल्द पता देना
पता देना वे चोर पकड़े गये या नहीं
जिन्होंने अच्छी-ख़ासी हिन्दी को कुछ-का-कुछ बना दिया
जिन्होंने बोल-बोलकर भाषा को कीचड़ बना डाला है

पता देना बाढ़ में
पानी के उतरने की लालसा बह गयी या बच गयी?

कुछ सच्चाइयाँ

1.

आदमी के ख़त्म होने का फ़ैसला
वक़्त नहीं करता
हालात नहीं करते
वह ख़ुद करता है
हमला और बचाव
दोनों आदमी ख़ुद करता है।

2.

प्यार आदमी को दुनिया में
विचरने लायक़ बनाता है या नहीं
इतना ज़रूर है कि
हम प्यार के बहाने (सहारे)
दुनिया में विचर ही लेते हैं।

3.

मुक्ति का जब कोई रास्ता न मिला
मैं लिखने बैठ गया हूँ
मैं लिखना चाहता हूँ वृक्ष
जानते हुए
कि लिखना वृक्ष हो गया
मैं लिखना चाहता हूँ पानी
'आदमी' – 'आदमी' मैं लिखना चाहता हूँ
किसी बच्चे का हाथ
किसी गोरी का मुख

मैं पूरी ज़ोर से
शब्दों को फेंकना चाहता हूँ आदमी की ओर
यह जानते हुए भी कि आदमी को कुछ न होगा
हमें ऐसे रखवालों की ज़रूरत नहीं
जो हम पर अपने महलों से हकूमत करें
हम मेहनतकशों को उनके दान की ज़रूरत नहीं
हम आपस में ही सब फ़ैसले करेंगे।

4.

आ गये मेरे बीत चुके पलों की गवाही देनेवाले
आ गये क़ब्रों में सोये हुए पलों को जगानेवाले
28.12.1971

5.

उनकी आदत है सागर से मोती चुग लाने की
उनका रोज़ का काम है, सितारों का दिल पढ़ना
29.12.1971

6.

मेरे पास चेहरा
सम्बोधक कोई नहीं
धरती का पागल इश्क़ शायद मेरा है
और तभी जान पड़ता है
मैं हर चीज़ पर हवा की तरह सरसराता हुआ गुज़र जाऊँगा
सज्जनो, मेरे चले जाने के बाद भी
मेरी चिन्ता की बाँह पकड़े रहना।

7.

हज़ारों लोग हैं
जिनके पास रोटी है

चाँदनी रातें हैं, लड़कियाँ हैं
और 'अक़्ल' है
हज़ारों लोग हैं, जिनकी जेब में
हर वक़्त क़लम रहती है
और हम हैं
कि कविता लिखते हैं...

– *डायरी के पृष्ठों से*

सलाम

मैं सलाम करता हूँ
आदमी के मेहनत में लगे रहने को
मैं सलाम करता हूँ
आनेवाले ख़ुशगवार मौसमों को
मुसीबतों से पाले गये प्यार जब सफल होंगे
बीते वक़्तों का बहा हुआ लहू
ज़िन्दगी की धरती से उठाकर
मस्तकों पर लगाया जायेगा।

ज़िन्दगी/मौत

जीने का एक और भी ढंग होता है
भरी ट्रैफ़िक में चौपाल लेट जाना
और स्लिप कर देना
वक़्त का बोझिल पहिया।

मरने का एक और भी ढंग होता है
मौत के चेहरे से उलट देना नक़ाब
और ज़िन्दगी की चार सौ बीस को
सरेआम बेपर्द कर देना।

घास

मैं घास हूँ
मैं आपके हर किये-धरे पर उग आऊँगा

बम फेंक दो चाहे विश्वविद्यालय पर
बना दो होस्टल मलबे के ढेर
सुहागा फिरा दो भले ही हमारी झोंपड़ियों पर
मुझे क्या करोगे?
मैं तो घास हूँ, हर चीज़ ढँक लूँगा
हर ढेर पर उग आऊँगा

बंगे[1] को ढेर कर दो
संगरूर[1] को मिटा डालो
धूल में मिला दो लुधियाना[1] का ज़िला
मेरी हरियाली अपना काम करेगी...
दो साल, दस साल बाद
सवारियाँ फिर किसी कण्डक्टर से पूछेंगी –
"यह कौन सी जगह है?
मुझे बरनाला[1] उतार देना
जहाँ हरे घास का जंगल है।"

मैं घास हूँ, मैं अपना काम करूँगा
मैं आपके हर किये-धरे पर उग आऊँगा।

---

1. पंजाब के विभिन्न क़स्बों के नाम

बरसात

सबके सामने बरसा है बादल
उनके नाम –
जिनके पुए नहीं पके
जिन्होंने पींग नहीं झूली
गीली रोशनी गवाह है
नंगे पैरों की कविता कीचड़ में लिखी हुई
बेनाम कवियों द्वारा
जिन्हें महीने का नाम
सिर्फ़ ख़ास मौसम की ख़्वाहिश से याद आया
संगीत न गला, न डूबा
भीगे हुए आलम ने सरेआम सुने
वृक्षों से टपके निखरे हुए बोल
हवा में बिखरे शब्द
पथों पर बहते गीत
वे आते रहे
और मिट्टी में बलिदान होते
बहाते रहे अपना रक्त

वे बूँदें थीं
जिनकी लाशों पर चलकर
दरियाओं ने रवानी पकड़नी थी
दिशा ढूँढ़नी थी...
फिर घूरे के ढेरों की
बदबू घुल गयी सारी
झोंपड़ियों से उबलते चावलों की महक आयी

और फ़िज़ाँ में गूँज उठे
बरसात के गीत...
खेतों में धान बोये गये
और गाँव की ड्योढ़ी में ताश खेली गयी।

['हेमज्योति' 1971 से]

जहाँ कविता ख़त्म नहीं होती

लड़को, मैं भी कभी तुम लोगों-जैसा ही था
छोटी-छोटी चोरियाँ करता हुआ भी चोर नहीं था
बात-बात पर बहाना बनाता था, पर मैं झूठा नहीं था
चाहे रोज़ ही कपड़े फाड़ देता था, पर नंगा नहीं समझा जाता था
बूढ़ी पुन्नी का चरखे का टेढ़ा तकला हमेशा मेरे ही सिर लगता था
लेकिन थाने की किताबों में मेरा नाम नहीं लिखा जाता था
घर के चौके की छोटी-सी मुँडेर
या बिनौलों की बोरी या पड़ोसियों की सीढ़ी के नीचे के खाने
मेरे छिपने के लिए काफ़ी थे
मैं तितलियों को सूई में पिरोकर नाचता था
सोन-चिरैयों को धागे के पटे से हाँकता था
लेकिन कभी हिंसावादी नहीं कहलाया
बस, बिल्कुल तुम लोगों-जैसा था

फिर ऐसे हुआ – धीरे-धीरे मैं तुम लोगों-जैसा न रहा
मुझे बताया गया कि झूठ बोलना पाप है
शिक्षा मनुष्य की तीसरी आँख है
चोरी करना बुरा है
ईश्वर एक है
सभी मनुष्य बराबर होते हैं –
मैं इन सभी वाक्यों के
अजीबोग़रीब आपसी सम्बन्धों के सामने सहम-सा गया
मुझे लगा – मेरे ख़िलाफ़
कोई बहुत भयानक षड्यंत्र शुरू होनेवाला है
मैंने घबराकर तुम्हारे हाथों से हाथ खींच लिया
और उदास होकर दौड़ता हुआ, किताबों की

कँटीली झाड़ियों में फँस गया
काले-काले अक्षर तीखे शूलों की तरह, मेरे बदन में उतरते गये
मैं जैसे झाड़ियों में छिपता फिरता कोई खरगोश था
जिसके पीछे लगे हुए थे परीक्षाओं के शिकारी कुत्ते

मैं कुछ परेशान-सा हो गया, जब मुझे पता चला
कि यहाँ तो पूरब है या पच्छिम
कहीं भी न कुछ उदय होता है न अस्त होता है
जब मुझे पता चला रब्ब रात-बिरात
हमारे ख़रबूज़ों में चीनी डालने नहीं आता
न ही हमारी कपास के टीण्डों को
चोगा माँगते नन्हें पक्षियों की चोंचों की तरह खोलने
जब मुझे पता चला कि धरती रोटी-जैसी नहीं, गेंद-जैसी है
आसमानों में नीला-सा दिखता शून्य है, रब्ब नहीं
जब मुझे पता चला, शिक्षा मनुष्य की तीसरी आँख नहीं
वरन दो ही आँखों का भेंग है –
और ऐसी बेशुमार बेमज़ा बातों का पता चला
मेरे भीतर कहीं कुछ गिरकर टूट गया था
और एक 'तड़ा...क्'-सी आवाज़ पर मैंने देखा
मेरी अँतड़ियों में रंगों और रहस्योंवाली
विचित्र कविता के टुकड़े गड़े हुए थे

फिर लड़को, तुम कौन और मैं कौन था
फिर मैं ख़ूबसूरत कोठियों और बाज़ारों को
हसरत भरी-सी नज़रों से देखता हुआ भी चोर समझा गया
पेंजे जाने के दर्द में कराहते हुए को भी 'पाखण्ड' ही कहा गया
अच्छे-ख़ासे कपड़ों पर भी नज़रें ऐसे उठीं
जैसे अलफ़ नंगा हूँ...
अपने बारे में कुछ भी कहने पर तोहमतों से बींधा गया
जब मैंने झूठ, चोरी, मेहरबान ईश्वर
और सब मनुष्यों के बराबर होने की धारणाओं पर
'दोबारा सोचना' चाहा तो मेरे इस तरह सोचने को

हिंसा कहा गया –
यारों के तहख़ाने-जैसे चौबारे
घने कोहरे-सा मेरी महबूब का हृदय
और घटाटोप ईख भी मुझे छिपा न सके
मैं जो छिप जाता था घर के चौके की छोटी-सी मुँडेर
या बिनौलों की बोरी या पड़ोसियों की सीढ़ी के नीचे ख़ानों की ओट में
... ...
... ...
और अब मैं बिल्कुल उनके सामने हूँ
बिना उद्घाटित पुलों की तरह
बिना पी हुई शराब या अनछुई छातियों की तरह
फिर वे आये... सच्चाइयों के झण्डाबरदार
उनके हाथों में व्यवस्था का टोका[1] था
बस तभी मुझे तथ्यों के तथ्य का ज्ञान हुआ
कि टोके की शक्ल झण्डे-सी होती है

लड़को, मेरा सच न मानना – 'गर कहूँ –
सिर्फ़ कपड़े का टोका छील सकता है इन्सानी सीनों की भीतरी गूँज को
'गर कहूँ – हर सच्चाई सिर्फ़ छिली हुई आह होती है
'गर कहूँ – पन्द्रहवें के बाद
हर वर्ष श्मशान से उठती भाप का गुब्बार होता है
लड़को, मैं अब तुम्हारे में से नहीं हूँ
मैं चील के पंजों में उड़ रहा आज़ाद चूहा हूँ
झुटपुटे की चुभलाई आँख हूँ
इतिहास के ताला लगे दरवाज़े पर बैठा मेहमान हूँ
बारहमासा से वर्जित कोई कुसगुन हूँ
जिससे कुछ भी शुरू या ख़त्म नहीं होता
कविता, नहीं, मेरी आवाज़ केवल गन्दगी पर बरसती वर्षा है
तुम्हारे लिए न आशीष न नसीहत
मेरे शब्द धुलाई करते हुए भी बदबू फैला रहे हैं...
असल में लड़को, मैं बहुत दहल गया हूँ इस भयानक यातना से

1. चारा काटनेवाली मशीन

कि आजकल पहाड़ों पर चढ़ना भी ऐसे लगता है
जैसे किसी लम्बी ढलान से उतर रहा होऊँ
सागर की छाती पर तैरना ऐसा है
जैसे डूबने की बहुत धीमी-सी क्रिया हो
यह कैसी यातना है?
कि आप लड़कियों, फूलों और पक्षियों को देख रहे हों
और सामने शून्य ही शून्य, आपकी आँख में मिर्च की तरह लड़े
मैं पूरे का पूरा थक गया हूँ
इस मशीनी-सी अफ़रा-तफ़री में चलते हुए
जहाँ रिश्ते अन्धे वेग में, अपने अर्थों से टकरा गये हैं
मैं – जो सिर्फ़ एक आदमी बनना चाहता था
यह क्या बना दिया गया हूँ?
और अब मैं चाहता हूँ, सड़क पर जा रहे किसी मॉडल स्कूल के
रिक्शे पर

'छड़प्प' से चढ़ जाऊँ और टॉफ़ी चूसता हुआ
इस बिखरे-बिखरे फैले संसार को, मासूम-सी नज़र से घूरूँ
और ज्ञान की उन सभी सच्चाइयों पर
नये सिरे से यक़ीन करना शुरू करूँ
जैसे वे बिल्कुल सच्ची ही हों...

काँटे का ज़ख़्म

(उस आदमी के नाम जिसके जन्म से कोई संवत् शुरू नहीं होता)

वह बहुत देर तक जीता रहा
ताकि उसका नाम रह सके

धरती बहुत बड़ी थी
और उसका गाँव बहुत छोटा
वह सारी उम्र एक ही झोंपड़ी में सोता रहा
वह सारी उम्र एक ही खेत में हगता रहा
और चाहता रहा
कि उसका नाम रह सके

पूरी उम्र में उसने सिर्फ़ तीन ही आवाज़ें सुनीं
एक मुर्ग़े की बाँग थी
एक पशुओं के घुरकने की
और एक अपने ही मसूड़ों में रोटी चुभलाने की
टीलों की रेशमी रोशनी में
सूर्यास्त की आवाज़ उसने कभी न सुनी
बहार में फूलों के चटख़ने की आवाज़ उसने कभी न सुनी
सितारों ने भी कभी उसके लिए कोई गीत न गाया
पूरी उम्र वह सिर्फ़ तीन ही रंगों से वाकिफ़ रहा
एक रंग ज़मीन का था
जिसका नाम उसे कभी न आया
एक रंग आसमान का था
जिसके बहुत-से नाम थे
लेकिन कोई भी नाम उसकी जीभ पर न चढ़ता था

एक रंग उसकी औरत के गालों का था
जिसका नाम लजाते हुए उसने कभी न लिया।

मूलियाँ वह ज़िद से खा सकता था
बढ़कर भुट्टे चबाने की शर्त उसने कई बार जीती
लेकिन वह ख़ुद बिना शर्त ही खाया गया
पके ख़रबूज़ों-जैसे उसकी उम्र के साल
बिना चीरे ही निगले गये
और कच्चे दूध-सी उसकी सीरत
बड़े स्वाद से पी ली गयी
उसे कभी पता भी न चल सका
वह कितना सेहतमन्द था
और यह लालसा कि उसका नाम रह सके
शहद की मक्खी की तरह
उसके पीछे लगी रही
वह ख़ुद अपना बुत बन गया
लेकिन उसका बुत कभी भी जश्न न बन सका

उसके घर से कुएँ तक का रास्ता
अभी भी सजीव है
लेकिन अनगिनत क़दमों के नीचे
उसके क़दमों के निशान दब गये हैं
अभी भी एक काँटे का ज़ख़्म हँसता है
अभी भी एक काँटे का ज़ख़्म हँसता है।

पुलिस के सिपाही से

मैं पीछे छोड़ आया हूँ
समन्दर रोती बहनें
किसी अनजान भय से
बाप की हिलती दाढ़ी
और सुखों का वर माँगती
बेहोश होती मासूम ममता को
मेरी खुरली पर बँधे
बेज़ुबान पशुओं को
कोई छाया में न बाँधेगा
कोई पानी न देगा
और मेरे घर में कई दिन
शोक में चूल्हा न जलेगा

सिपाही बता, मैं तुम्हें भी
इतना ख़तरनाक लगता हूँ?
भाई सच बता, तुम्हें
मेरी छिली हुई चमड़ी
और मेरे मुँह से बहते लहू में
कुछ अपना नहीं लगता?

तुम लाख दुश्मन-क़तारों में
बढ़-चढ़कर शेखियाँ बघार लो
तुम्हारे निद्रा-प्यासे नयन
और पथराया माथा
तुम्हारी फटी हुई निक्कर
और उसकी जेब में

तम्बाकू की रच गयी ज़हरीली गन्ध
तुम्हारी चुगली कर रहे हैं
'गर नहीं साझी तो बस अपनी
यह वर्दी ही नहीं साझी
लेकिन तुम्हारे परिवार के दुख
आज भी मेरे साथ साझे हैं

तुम्हारा बाप भी जब
सिर से चारे का गट्ठर फेंकता है
तो उसकी कसी हुई नसें भी
यही चाहती हैं
बुरे का सिर अब किसी भी क्षण
बस कुचल दिया जाये
तुम्हारे बच्चों को जब भाई
स्कूल का ख़र्च नहीं मिलता
तो तुम्हारी अर्द्धांगिनी का भी
सीना फट जाता है

तुम्हारी पी हुई रिश्वत
जब तुम्हारा अन्तस जलाती है
तो तुम भी
हकूमत की साँस-नली बन्द करना चाहते हो
जो कुछ ही वर्षों में खा गयी है
तुम्हारी चन्दन-जैसी देह
तुम्हारी ऋषियों-जैसी मनोवृत्ति
और बरसाती हवा-जैसा
परिवार का लुभावना सुख

तुम लाख वर्दी की ओट में
मुझसे दूर खड़े रहो
लेकिन तुम्हारे भीतर की दुनिया
मेरी बाज़ू में बाँह डाल रही है

हम जो बिना सँभाले
आवारा रोगी बचपन को
आटे की तरह गूँथते रहे
किसी के लिए ख़तरा न बने
और वे जो हमारे सुख के बदले
बिकते रहे, नष्ट होते रहे
किसी के लिए चिन्ता न बने
तुम चाहे आज दुश्मनों के हाथ में
लाठी बन गये हो
पेट पर हाथ रखकर बताओ तो
कि हमारी जात को अब
किसी से और क्या ख़तरा है?
हम अब सिर्फ़ उनके लिए ख़तरा हैं
जिन्हें दुनिया में बस ख़तरा ही ख़तरा है

तुम अपने मुँह की गालियों को
अपने क़ीमती गुस्से के लिए
सँभालकर रखो –
मैं कोई सफ़ेदपोश
कुर्सी का बेटा नहीं हूँ
इस अभागे देश का भाग्य बनाते
धूल में लथपथ हज़ारों चेहरों में से एक हूँ
मेरे माथे से बहती पसीने की धारा से
मेरे देश की कोई भी नदी बहुत छोटी है
किसी भी धर्म का कोई ग्रन्थ
मेरे ज़ख़्मी होंठों की चुप से अधिक पवित्र नहीं है
तुम जिस झण्डे को एड़ियाँ जोड़
सलामी देते हो
हम शोषितों के किसी भी दर्द का इतिहास
उसके तीन रंगों से बहुत गाढ़ा है
और हमारी रूह का हर एक ज़ख़्म
उसके बीच के चक्र से बहुत बड़ा है

मेरे दोस्त, मैं तुम्हारे कीलोंवाले बूटों तले
कुचला पड़ा भी
माउण्ट एवरेस्ट से बहुत ऊँचा हूँ

मेरे बारे में तुम्हारे कायर अफ़सर ने
ग़लत बताया है
कि मैं इस हकूमत का
मारक महादुश्मन हूँ
नहीं, मैंने तो दुश्मनी की
अभी पूनी भी नहीं छुई है
अभी तो मैं घर की मुश्किलों के सामने
हार जाता हूँ
अभी तो मैं अमल के गढ़े
क़लम से ही भर देता हूँ
अभी मैं दिहाड़ियों और जाटों के बीच की
लरजती कड़ी हूँ
मेरी दाईं बाज़ू होकर भी अभी तुम
मुझसे बेगाने लगते हो
अभी तो मुझे
हज्जामों के उस्तरे
ख़ंजर में बदलने हैं
अभी राज-मिस्त्रियों की करण्डी पर
मुझे चण्डी की वार लिखनी है
अभी तो मोची की सुम्मी
ज़हर में भिगोकर
चमकते नारों को जन्म देनेवाली कोख में घुमानी है

अभी धुम्मे बढ़ई का
भभकता धधकता हुआ तेसा
इस शैतान के झण्डे से
ऊँचा लहराना है
अभी तो आने-जानेवालों के

जूठे बर्तन माँजते रहे लागी
जुबलियों में – लाग लेंगे
अभी तो किसी कुर्सी पर बैठे
गीध की नरम हड्डी को जलाकर
'खुशिया' चूहड़ा हुक्के में रखेगा

मैं जिस दिन सातों रंग जोड़कर
इन्द्रधनुष बन गया
दुश्मन पर मेरा कोई वार
कभी ख़ाली न जायेगा
तब झण्डीवाली कार के
बदबूदार थूक के छींटे
मेरी ज़िन्दगी के चाव भरे
मुँह पर न चमकेंगे
मैं उस रोशनी के बुर्ज तक
अकेला नहीं पहुँच सकता
तुम्हारी भी ज़रूरत है
तुम्हें भी वहाँ पहुँचना होगा

हम एक क़ाफ़िला हैं
ज़िन्दगी की तेज़ खुशबुओं का
तुम्हारी पीढ़ियों की खाद
इसके चमन में लगी है
हम गीतों-जैसी गजर के
बेताब आशिक़ हैं
और हमारी तड़प में
तुम्हारी उदासी का नग़मा भी है

सिपाही बता, मैं तुम्हें भी
इतना ख़तरनाक लगता हूँ?
मैं पीछे छोड़ आया हूँ...

तूफ़ान कभी मात नहीं खाते

हवा का रुख़ बदलने से
बहुत उछले, बहुत कूदे
वे जिनके शामियाने डोल चुके थे
उन्होंने ऐलान कर दिया
अब वृक्ष शान्त हो गये हैं
अब तूफ़ान का दम टूट गया है –

जैसे कि जानते ही न हों
ऐलानों का तूफ़ानों पर
कोई असर नहीं होता
जैसे कि जानते ही न हों
वह उमस बहुत गहरी थी
जहाँ से तूफ़ान ने जन्म लिया
जैसे कि जानते ही न हों
तूफ़ानों की वजह
वृक्ष ही नहीं होते
वरन वह घुटन होती है
धरती का मुखड़ा जो
धूल में मिलाती है
ओ भ्रमपुत्रो, सुनो
हवा ने दिशा बदली है
हवा बन्द हो नहीं सकती
जब तक कि धरती का मुखड़ा
टहक गुलज़ार नहीं बनता
तुम्हारे शामियाने आज गिरे
कल गिरे
तूफ़ान कभी भी मात नहीं खाते।

बस कुछ पल और

बस कुछ पल और
तेरे चेहरे की याद में
बाक़ी तो सारी उम्र
अपने ही नक़्श खोजने से फ़ुरसत न मिलेगी

बस कुछ पल और
यह सितारों का गीत
फिर तो आसमान की चुप
सबकुछ निगल ही जायेगी....।

देख, कुछ पल और
चाँद की चाँदनी में चमकती
यह तीतरपंखी बदली
शायद मरुस्थल ही बन जाये
ये सोये हुए मकान
शायद अचानक उठकर
जंगल की ओर ही चल पडें....

इन्तज़ार

नहीं, यह बात तो कभी न होगी
कि तारे ही बहला देंगे महबूब का दिल
हो सकता है
रातों का ज़हर कम हो जाये
जब अँधेरा जीता जा चुका होगा...
फिर शायद सिगरेट से अन्तस को झुलसाने की
ज़रूरत न रहे
शायद आवारगी की ज़िल्लत कम हो जाये
ख़त्म हो जाये बेचारगी का दर्द...
शायद उम्र के सफ़े पर
ग़लतियाँ लगाने की मुश्किल, इतनी गहरी न रहे
हो सकता है
नफ़रत में भागने का संकट न रहे
और अपने चेहरे को पहचानकर
अपना कह सकने की शर्म न रहे...

इन्तज़ार तो शायद
कभी भी ख़त्म न हो।

संकट के पल

ऐ संकट के पल!
मैं चला हूँ उँगलियों में पकड़कर
अपने अनन्त के अनछुए टुकड़े
तुम्हारे वर्तमान के छल्ले से गुज़ारने के लिए
तुम्हारे नाम में से तुम्हें पैदा करने के लिए...

ऐ संकट के पल!
यहाँ एक नदी है आवाज़ों की
जिसमें मेरी कविताएँ डूब गयीं
तुम्हारा और मेरा साझा अतीत गल गया है
एक काग़ज़ की नाव की तरह...

ऐ संकट के पल!
यहाँ खुश्क धूल उड़ती है वीरान रास्तों पर
और धूल में उड़ जाते हैं
उम्र के वर्ष
अन्तरिक्ष में लकीर न तुम डाल सकोगे, न मैं
और अपना यही रिश्ता है
लेकिन मुझे महसूस करने दो तुम
अपने जिस्म में हो रही इतिहास की पीड़ा
मेरी खुरदुरी हथेली पर
तुम अपना 'कुछ नहीं' रख दो
मैं तुम्हारे लटकते धड़ को
यह अपने पाँव भेंट करता हूँ...

ऐ संकट के पल!
आज दरवाज़े पर बन्दनवार बाँधो
मैं तुम्हारी चुप को सुनने आया हूँ
तुम्हारे शून्य को जीने आया हूँ।

संविधान

यह पुस्तक मर चुकी है
इसे न पढ़ें
इसके शब्दों में मौत की ठण्डक है
और एक-एक पृष्ठ
ज़िन्दगी के आख़िरी पल-जैसा भयानक
यह पुस्तक जब बनी थी
तो मैं एक पशु था
सोया हुआ पशु...
और जब मैं जगा
तो मेरे इन्सान बनने तक
यह पुस्तक मर चुकी थी
अब यदि इस पुस्तक को पढ़ोगे
तो पशु बन जाओगे
सोये हुए पशु।

हम लड़ेंगे साथी

हम लड़ेंगे साथी, उदास मौसम के लिए
हम लड़ेंगे साथी, गुलाम इच्छाओं के लिए
हम चुनेंगे साथी, ज़िन्दगी के टुकड़े

हथौड़ा अब भी चलता है, उदास निहाई पर
हल की लीकें अब भी बनती हैं, चीख़ती धरती पर
यह काम हमारा नहीं बनता, सवाल नाचता है
सवाल के कन्धों पर चढ़कर
हम लड़ेंगे साथी

क़त्ल हुए जज़्बात की क़सम खाकर
बुझी हुई नज़रों की क़सम खाकर
हाथों पर पड़ी गाँठों की क़सम खाकर
हम लड़ेंगे साथी

हम लड़ेंगे तब तक
कि बीरू बकरिहा जब तक
बकरियों का पेशाब पीता है
खिले हुए सरसों के फूलों को
बीजनेवाले जब तक ख़ुद नहीं सूँघते
कि सूजी आँखोंवाली
गाँव की अध्यापिका का पति जब तक
जंग से लौट नहीं आता
जब तक पुलिस के सिपाही
अपने ही भाइयों का गला दबाने के लिए विवश हैं
कि बाबू दफ़्तरों के

जब तक रक्त से अक्षर लिखते हैं...
हम लड़ेंगे जब तक
दुनिया में लड़ने की ज़रूरत बाक़ी है...

जब बन्दूक़ न हुई, तब तलवार होगी
जब तलवार न हुई, लड़ने की लगन होगी
लड़ने का ढंग न हुआ, लड़ने की ज़रूरत होगी
और हम लड़ेंगे साथी...

हम लड़ेंगे
कि लड़ने के बग़ैर कुछ भी नहीं मिलता
हम लड़ेंगे
कि अभी तक लड़े क्यों नहीं
हम लड़ेंगे
अपनी सज़ा क़बूलने के लिए
लड़ते हुए मर जानेवालों
की याद ज़िन्दा रखने के लिए
हम लड़ेंगे साथी...

रिहाई : एक प्रभाव

आप जब बाहर आते हैं
तब पुनः घुटनों चलना तो सीखना नहीं पड़ता
ज़बान तोतली नहीं होती
न माँ के दूध की ही तलब होती है

आप आसमान पर लिखे नामों में
अपना नाम ढूँढ़ते हैं
हवा तसदीक़ करती है
और पौधे जश्न मनाते हैं –
ऐसे शुरू होता है, ज़िन्दगी का अमल फिर से...
फिर वही संघर्ष की कथा, आत्मा को बहलाने के लिए
फिर वही जनता का जंगल, खो जाने के लिए
फिर वही जीत की उम्मीद...
ऐसे शुरू होता है
ज़िन्दगी का अमल फिर से।

[जेल से]

हाथ

मैं अपने जिस्म को
हाथों से सँभाल सकता हूँ
मेरे हाथ जब महबूब का हाथ माँगते हैं
पकड़ने को तो मैं चाँद भी हाथ में पकड़ना चाहता हूँ

मेरे हाथों को लेकिन
सींखचों का स्पर्श बिना शिकवा मुबारक है
साथ ही कोठरी के इस अँधेरे में
मेरे हाथ, हाथ नहीं होते
सिर्फ़ थप्पड़ होते हैं...

हाथ मिलाने पर पाबन्दी सिसकती रह जाती है
जब अचानक कोई साथी सामने आता है
हाथ खुद-ब-खुद
मुक्का बनकर लहराने लगते हैं...

दिन हाथ खींचता है
तो रात हाथ बढ़ाती है
कोई हाथ छीन नहीं सकता इन हाथों का सिलसिला
या कभी दरवाज़ों की पाँचों की पाँच सलाख़ें
बन जाते हैं कोई बड़े प्यारे हाथ –

एक हाथ मेरे गाँव के बुजुर्ग तुलसी का
जिसकी उँगलियाँ
वर्षों की गूँथ-गूँथकर थीं इतनी थकी
कि मुझे पढ़ाते हुए

उर्दू के पहले सबक़
बन जाता था उससे अलिफ़ का 'त'...

एक हाथ जगीरी दर्ज़ी का
जो जब भी मुझे जाँघिया सिलकर देता
तो लेता था पारिश्रमिक
मेरे कान मरोड़ने में
और यह जानते हुए भी कि मैं उलट करने से
बाज़ नहीं आऊँगा
नसीहत देता था –
पशुओं के साथ पोखर में न घुसा कर
बचकाने खेल खेलने से बाज़ आयेगा या नहीं?

एक हाथ प्यारे नाई का
जो काटते हुए मेरे केश
डरता रहता था मेरे सिख घरवालों से...

एक हाथ मरो दाई का
जिसके हाथ में था कोई रिकार्ड
जो सदा राग गाता था –
'जीते-जागते रहो बेटे!'

और एक हाथ दरसू दिहाड़िये का
जिसने पी ली आधी सदी
रखकर हुक़्क़े की चिलम में...

मुझसे कोई छीन नहीं सकता
इन हाथों का सिलसिला
हाथ जेबों में हों या बाहर
हथकड़ी में हों या बन्दूक़ के कुँदे पर
हाथ, हाथ होते हैं
और हाथों का एक धर्म होता है

हाथ यदि हों तो
जोड़ने के लिए ही नहीं होते
न दुश्मन के सामने खड़े करने के लिए ही होते हैं
ये गर्दनें मरोड़ने के लिए भी होते हैं
हाथ यदि हों तो
हीर[1] के हाथ से चूरी पकड़ने के लिए ही नहीं होते
सैदे[2] की बारात रोकने के लिए भी होते हैं
क़ैदो[3] की कमर तोड़ने के लिए भी होते हैं
हाथ श्रम करने के लिए ही नहीं होते
शोषक हाथों को तोड़ने के लिए भी होते हैं...

जो हाथों का धर्म भंग करते हैं
जो हाथों के सौन्दर्य का अपमान करते हैं
वे पंगु होते हैं
हाथ तो होते हैं सहारा देने के लिए
हाथ तो होते हैं हुंकारा भरने के लिए।

[जेल से]

1. प्रसिद्ध लोक नायिका
2. हीर का अनचाहा पति
3. हीर के प्यार का दुश्मन चाचा

मेरे पास

मेरे पास बहुत कुछ है
शाम है – बौछारों से भीगी हुई
ज़िन्दगी है – नूर में दहकती हुई
और मैं हूँ – 'हम' के झुरमुट में घिरा हुआ
मुझसे और क्या छीनेंगे
शाम को किसी दूर-दराज़ की कोठरी में बन्द करेंगे?
ज़िन्दगी से ज़िन्दगी को कुचल देंगे?
'हम' में से 'मैं' को निथार लेंगे?
जिसे आप मेरा 'कुछ नहीं' कहते हैं
उसमें आपकी मौत का सामान है
मेरे पास बहुत कुछ है
मेरे उस 'कुछ नहीं' में बहुत कुछ है।

[जेल से]

दान

आपने मुझे दिया है सिर्फ़ एक कमरा
स्थिर और बन्द
मापना तो मुझे है
कि इसमें कितने क़दमों से
मील बनता है
कितने मील चलकर दीवार दीवार नहीं रहती
और सफ़र के अर्थ शुरू होते हैं...

आपने मुझे कुछ हक़ दिये हैं –
घर से जलावतनी का
रोटी के लिए मिट्टी होने का
महबूब के ग़म में आँखें खोने का
और मौत के भयानक कोहरे में गुम हो जाने का
लेकिन एक हक़ और होता है
जो दिया नहीं, सिर्फ़ छीना जाता है...

आपके पास वायदों का समुद्र
मेरे डूबने के लिए
जिसमें तैरती हैं
सुनहरी सपनों की मछलियाँ
लेकिन उपलब्धि का किनारा ओझल होने से पहले
मैंने पकड़ लिया है बेवफ़ाई का चप्पू
और अब आपके पास बचा है
मुझे देने के लिए सिर्फ़ एक पुरस्कार –
मौत
और वह भी बड़े दानवीरो!
आपका स्वयं रखने को जी चाहता है!

[जेल से]

आसमान का टुकड़ा

मेरी तो जान है आसमान का वह टुकड़ा
जो रोशनदान में से झाँक पड़ता है
सख़्त दीवारों और सींखचों का भी लिहाज़ नहीं रखता

वे तो चाहते हैं
कि मैं इस टुकड़े के सहारे ही जिऊँ
और फिर कहते क्यों नहीं इससे
कि वहीं जम जाये, नये-नये रंग न बदले –
देखो यह टुकड़ा हर पल रंगत बदलता है
इसके हर रंग के साथ लगा है ऋतुओं का सौन्दर्य
ज़रा पूछ देखो इस टुकड़े से, मौसम से न बँधे
फेंक दे यह अपनी देह से
ऋतुओं की परछाइयाँ
यह टुकड़ा तो अपने कन्धों पर
पूरा आसमान ही उठाये फिरता है...

[जेल से]

बाडर (बॉर्डर)

(**मोगा गोलीकाण्ड**[1] को समर्पित)

भर जायेंगे अब धूल से क़स्बों के सिर
घूमेंगे ट्रक बी. एस. एफ़. के
पली हुई जुँओं की तरह...
इस बार नहीं आयेगी सतवर्ग के फूलों पर खिलने की रुत

कुचली गयी घास तड़पेगी
कॉलेजों के आँगनों में
रात-दिन पवन को भ्रष्ट करेगी
थाने में लगी वायरलेस...

दरअस्ल
यहाँ हर जगह पर एक बाडर है
जहाँ हमारे हक़ ख़त्म होते हैं
और प्रतिष्ठित लोगों के शुरू होते हैं
और हम हर तरह आज़ाद हैं इस पार –
गालियाँ निकालने के लिए
मुक्के लहराने के लिए
चुनाव लड़ने के लिए
सतवर्गों की मुस्कान चूमने के लिए
कोई बन्दिश नहीं इस पार
और इससे आगे है...
क़स्बों में उड़ती हुई धूल
पली हुई जुँओं की तरह
रेंगते ट्रक बी. एस. एफ़. के।

1. 5 अक्तूबर, 1972 को मोगा में छात्र-प्रदर्शन पर पुलिस की गोलीबारी से कुछ विद्यार्थी शहीद हुए थे।

उड़ते हुए बाज़ों के पीछे

उड़ गये हैं बाज़ चोंचों में लेकर
हमारी चैन से एक पल बिता सकने की ख़्वाहिश
दोस्तो, अब चला जाये
उड़ते हुए बाज़ों के पीछे...

यहाँ तो पता नहीं कब आ धमकें
लाल पगड़ियोंवाले आलोचक
और शुरू कर दें
कविता की दाद देनी
इससे पहले
कि फैल जाये थाने की रोज़ फैलती इमारत
तुम्हारे गाँव, तुम्हारे परिवार तक
और संलग्न हो जाये
आत्मसम्मान का काँपता हुआ पृष्ठ
उस छुरी मुखवाले मुंशी के रोज़नामचे में –
दोस्तो, अब चला जाये
उड़ते हुए बाज़ों के पीछे

यह तो सारी उम्र न उतरेगा
बहनों के ब्याहों पर उठाया क़र्ज़
खेतों में छिड़के ख़ून का
हर क़तरा भी इकट्ठा कर
इतना रंग न बनेगा
कि चित्रित कर लेंगे, एक शान्त
मुस्कुराते हुए इन्सान का चेहरा
और फिर

ज़िन्दगी की पूरी रातें भी गिनते चलें
सितारों की गिनती न हो पायेगी
क्योंकि हो नहीं सकेगा यह सब
फिर दोस्तो, अब चला जाये
उड़ते हुए बाज़ों के पीछे...

यदि आपने महसूस की हो
गण्ड[1] में जम रहे गर्म गुड़ की महक
और देखा हो
जोती हुई गीली ज़मीन का
चाँद की चाँदनी में चमकना
तो आप सब ज़रूर कुछ इन्तज़ाम करो
लपलपाते हुए मतपत्र का
जो लार टपका रहा है
हमारे कुओं की हरियाली पर
जिन्होंने देखे हैं
छतों पर सूखते सुनहरे भुट्टे
और नहीं देखे
मण्डियों में सूखते दाम
वे कभी न समझ पायेंगे
कि कैसे दुश्मनी है
दिल्ली की उस हुक्मरान औरत की
नंगे पाँवोंवाली गाँव की उस सुन्दर लड़की से
सुरंग-जैसी ज़िन्दगी में चलते हुए
जब लौट आती है
अपनी आवाज़ खुद के ही पास
और आँखों में चुभते रहते
बूढ़े बैल के उचड़े कानों-जैसे सपने

1. गुड़ जमाने की कड़ाही या चाक

जब चिमट जाये गलियों का कीचड़
उम्र के सबसे हसीन सालों से
तो करने को बस यही बचता है
कि चला जाये
उड़ते हुए बाज़ों के पीछे...

गीत-3

पाँव की मिट्टी, पहाड़ बन जाना
तिनकों की झोंपड़ी, मीनार बन जाना
अपनी कमाई सँभाल रखना
ओ किरती की झोंपड़ी...

लाख लाख का तेरा तिनका
ओ किरती की झोंपड़ी
युगों की सृष्टि तुम्हारे तिनकों में खेलती
सदियों से आयी गुलामी तुम झेलतीं
हो जा होशियार, आयी है बहार
अब मिला अम्बरों से आँख
ओ किरती की झोंपड़ी...

उठ तेरे वारिसों का आ गया ज़माना
हवाओं में गूँजा आज़ादी का तराना
जनता उठाये हथियार आज बाँधकर क़तार
लेनी दुश्मनों की क़तार उन्होंने रोक
ओ किरती की झोंपड़ी...

कई तेरे वारिसों ने दी ज़िन्दगी वारी
जिस रास्ते पर गया था सराभा करतार
वही बन गया रास्ता, सारी दुनिया गवाह
कोई पूछ ले हाकिमों से बेशक
ओ किरती की झोंपड़ी...

कल बाबा बुड्ढा[1] मारा एक पुलिस ने
सीने में गोली खाई बाबू व दलीप[1] ने
पूरी की है रस्म, दयासिंह[1] की क़स्म
बात रही न हकूमतों के वश
ओ किरती की झोंपड़ी...

युगों तक रहेंगी ये गाथाएँ मशहूर
लिखे इतिहास जो गाँव दद्दाहूर[2]
बाज़ों वाले की कटार, आज रही ललकार
उसने काट काट देने दुश्मन रख
ओ किरती की झोंपड़ी...

झोंपड़ी री अब पासबान तेरे जाग उठे
जागे तेरे खेत, किसान तेरे जाग उठे
खोली आँख मज़दूर, अभी जाना बहुत दूर
उसने छीनना अभी ज़ालिमों से हक़ री
ओ किरती की झोंपड़ी...

पैरों की मिट्टी पहाड़ बन जाना
तिनकों की झोंपड़ी, मीनार बन जाना
अपनी कमाई सँभाल रखना
ओ किरती की झोंपड़ी...
लाख लाख का तेरा तिनका
ओ किरती की झोंपड़ी...

1. पंजाब में पुलिस के हाथों मारे गये विभिन्न कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी।
2. पंजाब का एक गाँव, जहाँ पुलिस ने बहुत अत्याचार किये थे।

उसके नाम

मेरी महबूब, तुम्हें भी गिला होगा मुहब्बत पर
मेरी ख़ातिर तुम्हारे बेक़ाबू चावों का क्या हुआ
तुमने इच्छाओं की सुई से जो उकेरी थी रूमालों पर
उन धूपों का क्या बना, उन छायाओं का क्या हुआ

कवि होकर कैसे बिना पढ़े ही छोड़ जाता हूँ
तेरे नयनों में लिखी हुई इकरार की कविता
तुम्हारे लिए सुरक्षित होंठों पर पथरा गयी है री
बड़ी कड़वी, बड़ी नीरस, मेरे रोज़गार की कविता

मेरी पूजा, मेरा ईमान, आज दोनों ही ज़ख़्मी हैं
तुम्हारी हँसी और अलसी के फूलों पर नाचती हँसी
मुझे जब लेकर चले जाते हैं, तुम्हारी ख़ुशी के दुश्मन
बहुत बेशर्म होकर खनकती है हथकड़ियों की हँसी

तुम्हारा दर ही है, जिस जगह झुक जाता है सिर मेरा
मैं जेल के दर पर सात बार थूककर गुज़रता हूँ
मेरे गाँव में ही सत्व है कि मैं बिंध-बिंधकर जीता हूँ
मैं हाकिम के सामने से, शेर की तरह दहाड़कर गुज़रता हूँ

मेरी हर पीड़ा एक ही सुई की नोक से गुज़रती है
है लुटी शान्ति सोच की, क़त्ल है जश्न खेतों के
वे ही बन रहे हैं देखो तुम्हारे हुस्न के दुश्मन
जो आज तक चरते रहे हमारे खेतों का हुस्न

मैंने देखा है ओस से नहाते गेहूँ के बदन को
देखने पर मुझे उसके मुख पर आयी लाज भी दिखी है
मैंने बहते खाल के पानी पर बिंधती देखी है धूप सूरज की
मैंने रात सपने में वृक्षों को चूमते देखा है

धरेक[1] के फूल पर गाती महक को मैंने देखा है
कपास के फूलों में ढलती टकसाल को मैंने देखा है
चोरों की तरह खुसर-फुसर करती चरियों को मैंने देखा है
सरसों के फूल पर ढलती शाम को मैंने देखा है

मेरा हर चाव इन फ़सलों की मुक्ति से जुड़ा है
तुम्हारी मुस्कान की गाथा है, हर किसान की गाथा
मेरी क़िस्मत है बस अब बदलते हुए वक़्त की क़िस्मत
मेरी गाथा है बस अब चमकती तलवार की गाथा

मेरा चेहरा आज तल्ख़ी ने ऐसे खुरदुरा बना दिया है
कि इस चेहरे पर आकर चाँदनी को खुजली-सी लगती है
मेरी ज़िन्दगी के ज़हर आज इतिहास के लिए अमृत हैं
इन्हें पी-पीकर मेरी क़ौम को होश-सा आता है।

---

1. वृक्ष का नाम

अहमद सलीम के नाम[1]

(युद्धबन्दियों को समर्पित)

ओ क़लम के मज़दूर, ओ मेरे अहमद सलीम
चूमकर सींखचे, मेरे ताज़े बने रिश्ते के वीर
मैं भी हूँ जेलों का शायर, मेरा भी इश्क़ हैं लोग
तुम्हे सताते हैं पिण्डीवाले और मुझे दिल्ली के तीर

तभी तो पकड़े जाने पर तुम्हारे, चिल्ला नहीं उठा था मैं
मैं तो ख़ुश हुआ था कि हो गयी तुम्हारी कविता जवान
साथ ही मेरे घर में भी थे, जल रहे ढाके अनेक
यहाँ भी चिंघाड़ रहा था, भेस बदले यहिया ख़ान

मैं बड़ा हैरान था, क्रन्दन मचाते दम्भियों को देखकर
जो तुम्हारे सींखचों के पीछे होने पर थे रोते-चीख़ते
जलते घर की ओर पीठ कर, रेत फेंकते पड़ोस में
मैं दुखी था, थूक रहे हैं मुँह पर मेरे यार के

मैं नहीं कहता, क़ातिल कहीं भी हों मुआफ़
मैं नहीं कहता कहीं भी, शोषण है जायज़
मैं तो कहता हूँ शोषक बदलना मुक्ति नहीं
भारत-पाक बनियों की, एक-सी है बही
मैं तो कहता हूँ, आज़ादी दानों की मुट्ठी नहीं
दान जो हो सके, पैसे से जो ख़रीदी जा सके
यह तो फ़सल, जिसे रक्त से सींचते हैं लोग
यह नहीं कोई प्रेम-पत्र, कबूतर जिसे ला सके

1. पाकिस्तान के पंजाबी कवि अहमद सलीम के 1972 में पंजाब आने पर लिखी कविता

बेटे खानेवाली डायन, घर में कोई छोड़ा नहीं
नरम सीने खाने का, जिसे पड़ा हो स्वाद
ज़िन्दगी की क़लम वह औरों के घर लगा सकती नहीं
वह खिला सकती नहीं, हमसायों के आँगन में बाग़,

आ दिखाऊँ तुम्हें मैं बंगाल के रिसते हुए ज़ख़्म
आ तुम्हें दिखा दूँ मैं आन्ध्र के दिल में सुराख़
यदि तुम्हें चाहिए इस आज़ादी बाँटती देवी के दर्शन
आ मेरे पंजाब के जलते हुए मोगे[1] को देख

तुम्हारे पकड़े जाने पर जो गा रहे थे हमदर्दी के मरसिये
बहुत मचाते थे जो यहिया ख़ाँ के ज़ुल्मों का शोर
पुतले जो लोकतंत्र के, उनकी जेलों के भीतर
आ तुम्हें सुँघा दूँ, जलते हुए यौवन की गन्ध

न हमने जीता है युद्ध, और न हारे हैं पाकिस्तानी कहीं
यह तो पापी पेट थे जो पुतलियाँ बनकर थे नाचे
अभी तो बस पेट ही पेट हैं, आदमी पूरे नहीं
अभी न दुश्मन हैं हम, न किसी के हैं सगे

अभी तो जंगबाज़ों की टोली, चुहल कर रही
जलाकर ढाका को, बहले आम के फूलों से
इसे कविता जगाती है, छम्ब[2] किनारे खण्डहरों में
इश्क़ होता है, धुँधुआयी धरती के होंठों से

न तो वे मर्दे-मुजाहिद, न वे क़ैदी जंग के
न उन्होंने लूटी इज़्ज़तें, न उन्होंने फेंके हथियार
न पैर उनके पास, न शीश उनकी गर्दनों पर
क्या उन्होंने हारना और क्या उन्होंने जीतनी है जंग

1. पंजाब का एक क़स्बा
2. भारत-पाक सीमा पर स्थित गाँव

उनकी ख़ातिर तुम क्यों नहीं बोलते अहमद सलीम
जिस्म जो अत्याचारियों के हुक्म में बँधे पड़े
तड़पते हुए जो चले गये अपने परिवारों से दूर
तड़पते हैं आज भी वे भारत में बँधे हुए

हर दूसरे-तीसरे दिन जब फुँकारता है रेडियो
भागते हुए पेट कुछ टकराये संगीनों से
क्यों तुम्हारी दयालु क़लम कभी रोयी नहीं
क्यों तुम्हारे कोमल ख़यालों में नहीं आता भूकम्प

तुम्हारी वह हमदर्दी भरी आत्मा कहाँ गयी
या है तुम्हें ख़ौफ़, टूटे न भारत में तुम्हारा मान
मैं नहीं कहता, टक्कर ज़ुल्म से लिया न करो
मैं तो कहता हूँ ज़ुल्म की जड़ों से पहचान करो
गरजते पत्तों पर थूककर लौट जाया न करो

आओ हम पेटों से कहें, सिरों की ख़ातिर लड़ें
बनकर पूरे जिस्म, अपनी क़िस्म की ख़ातिर लड़ें
फिर बनाकर जंगी क़ैदी, पूरी देंगे सज़ा
अभी तो बस यारो, बस अपने जिस्म की ख़ातिर लड़ें

लंका के क्रान्तिकारियों से[1]

लंका के हमराही मेरे, जुझारू वीर संग्रामी
मैं अदना भारतीय तेरी कचहरी में हाज़िर हूँ
तुम्हारा रोष भी सच्चा है और मेरी अर्ज़ भी सच्ची है
न तुम बेगाने हो, न मैं ही तुमसे इन्कारी हूँ

तुम्हारे परखचे उड़ाने को, तुम्हारे सपने बिखेरने को
मेरे देश से 'गर तुम्हारे लिए सौग़ात आयी है
यह बात कोई अजूबा नहीं है तेरे लिए न मेरे लिए
पुरानी बात है यार, चोर ने चोर से यारी निभायी है

तुम्हारे भी दिल में शोले भड़के, मेरा भी ख़ून खौला है
'गर हथियार उठाये तुमने, मैंने कब सब्र किया है
मेरे लंका के वीर, हम एक ही दर्द जी रहे हैं
मेरा रक्त राम ने पिया, तुम्हारा रावण ने पिया है

रक्त पिलानेवाले जब कभी चौकस होते हैं
इन्हें रक्त पिलाने का नशा नहीं रहता
इस वानर क़ौम को जब सच की पहचान होती है
तब फिर राम और रावण में कोई फ़र्क़ नहीं रहता

यह इन्दिरा जिसने तुम्हें मौत का पैग़ाम भेजा है
स्विट्ज़रलैण्ड में जन्मी, लन्दन की बेटी है
इसकी साड़ी में डॉलर है, इसकी अंगिया में रूबल है
इसे मेरे देश की कहना, मेरे देश की हेठी है

1. 1971 में लंका में उठे विद्रोह पर जालंधर जेल में लिखी कविता

तुम सच मानना, हर लड़की मेरे देश की इन्दिरा नहीं
मेरी धरती में उगती है, अजिता बहिन[1] की हिम्मत
तुम आज भी देख सकते हो, ज़ुल्म की मार के थप्पड़
'गर लंका के बहादुर देखो तुम केवल कौर[1] का चेहरा

मैं ख़ुद बन्द हूँ सींखचों में, तुम्हारे लिए कुछ भेज सकता नहीं
तुम भर देना आज़ादी-हीर की माँग में ख़ुद सिन्दूर
जब यह लोहे के हरकारे, तुम पर बम फेंकेंगे
तुम जूझोगे, मेरे साथी भी बदला लेंगे पूरा

आ लंका के वीर, एक इक़रार हम कर लें
धर्मयुद्ध में जूझने का, दशहरा रोज़ मनाने का
हक़ों की सीता पर ज़ुल्म किसी का होने न देंगे
कि दस हों या सौ, उतारें शीश रावण का

1. केरल और पंजाब की क्रान्तिकारी औरतें

मैं पूछता हूँ

मैं पूछता हूँ आसमान में उड़ते हुए सूरज से
क्या वक़्त इसी का नाम है
कि घटनाएँ कुचलती चली जायें
मस्त हाथी की तरह
एक समूचे मनुष्य की चेतना को?
कि हर सवाल
केवल परिश्रम करती देह की ग़लती ही हो?

क्यों सुना दिया जाता है हर बार
पुराना लतीफ़ा
क्यों कहा जाता है हम जीते हैं
ज़रा सोचें –
कि हममें से कितनों का नाता है
ज़िन्दगी-जैसी किसी चीज़ के साथ!

रब्ब की वह कैसी रहमत है
जो गेहूँ गोडते फटे हाथों पर
और मण्डी के बीच के तख़्तपोश पर फैले मांस के
उस पिलपिले ढेर पर
एक ही समय होती है?

आख़िर क्यों
बैलों की घण्टियों
और पानी निकालते इंजनों के शोर में
घिरे हुए चेहरों पर जम गयी है
एक चीख़ती ख़ामोशी?

कौन खा जाता है तलकर
टोके पर चारा लगा रहे
कुतरे हुए अरमानों वाले पट्ठों की मछलियाँ?

क्यों गिड़गिड़ाता है
मेरे गाँव का किसान
एक मामूली पुलिसवाले के सामने?

क्यों किसी कुचले जा रहे आदमी के चीख़ने को
हर बार
कविता कह दिया जाता है?
मैं पूछता हूँ आसमान में उड़ते हुए सूरज से

ख़ूबसूरत पैड दीवारें जेल की

शब्दों की आड़ लेकर
मैंने जब भी अर्थों का दुखान्त ओझल किया है
बहुत पछताया हूँ
मैंने जिस धरती पर खड़े होकर
धरती के संगीत की सौगन्ध खायी थी
उस पर कितनी बार फिसलकर गिरा हूँ
मुझे सूख गये वृक्षों का श्राप मिला है
और
मैंने बार-बार सूली और बहिश्त को
दो सौतनें माना है
जिन्हें एक ही पलंग पर गर्भवती बनाते
मेरा बदन सिमटता जाता है
लेकिन मेरा आकार और निखरता है
ठीक
मेरी क़लम कोई रंगसाज की कड़ाही नहीं है
मैं तो सड़कों पर चलता हुआ
इतना बिखर गया हूँ
कि मेरे अपाहिज जिस्म को
याद भी नहीं आता
कि मेरा कौन-सा अंग वियतनाम में
और कौन-सा अफ़्रीका के किसी मरुस्थल में
छूट गया है?
मैं दिल्ली के किसी कॉफ़ी हाउस
में बैठा हूँ या आन्ध्र के जंगलों में?
बार-बार बीतते पलों के साथ

मैं अपने अस्तित्व को छूता हूँ
मेरी छह कविताओं की माँ
पिछले इतवार मेरी ही परछाईं के साथ
भाग गयी है
और मैं आवाज़ें पकड़ने की कोशिश में
कितना दूर निकल आया हूँ
मेरे नक्श पंचांग की
गुज़री तारीखें बनकर रह गये हैं
बारी-बारी से नेपोलियन, चंगेज़ ख़ाँ और सिकन्दर
मेरे में से गुज़र गये हैं
अशोक और गौतम बेबाक़ देख रहे हैं
बेपर्द पत्थर का सोमनाथ
जो मैं एवरेस्ट पर खड़ा देखता हूँ
तिड़का हुआ ताजमहल
पीतल का हरि मंदिर
और अजन्ता खण्डहर-खण्डहर
और मैं सोचता हूँ
कुतब की पांच मंज़िलें जो बाक़ी हैं
क्या आत्महत्या के लिए काफ़ी हैं?
लेकिन आख़िर
मुझे मानना होता है
कि जिस समय मैंने जुपिटर के बेटे
और अरस्तू के शिष्य से
धूप छोड़कर खड़ा होने के लिए कहा था
तो मेरी कमर में सिर्फ़ जाँघिया था
इसीलिए मैंने
अब ख़ूबसूरत पैड झुलसा दिये हैं
और क़लम संगीन बनाकर
जेल की दीवारों पर लिखना चाहता हूँ
और यह सिद्ध करने में व्यस्त हूँ

कि क्षितिज के पार भी
पहाड़ होते हैं
जिनकी ढलानों पर
किरनें भी, क़लमें भी
जड़ी जा सकती हैं।

हर बुलावे पर मरते रहना

जब मैं पैदा हुआ
तो जीने की क़सम खाकर पैदा हुआ
और हर बार जब मैं फिसलकर गिरा
मेरी माँ लानतें भेजती रही!

कोई साहिबाँ[1] मेरे क़ायदे को ग़लत पढ़ती रही,
अक्षरों पर गिराकर स्याही
तख़्ती मिटाती रही
हर जश्न पर
मेरी कामयाबी के हार
उसे पहनाये गये
मेरी गली के मोड़ तक
आकर वह लौट जाती रही

मेरी माँ का वचन है
हर बुलावे पर मरते रहना
तेरे ज़ख़्मी जिस्म को
बक्की[2] बचाती रहेगी
जब भी मेरे सिर पर
कोई तलवार चमकी है
मैं केवल मुस्कुराया हूँ
और मुझे नींद आ गयी है
जब मेरी बक्की को

1. पंजाब की प्रसिद्ध प्रेम-कथा 'मिर्ज़ा-साहिबाँ' की नायिका
2. मिर्ज़ा की घोड़ी

मेरी लाश के टुकड़े
उठाने की सूझ आयेगी
तब मैं मिर्ज़ा नहीं रहूँगा।

अन्त में

हमें पैदा नहीं होना था
हमें लड़ना नहीं था
हमें तो हेमकुण्ट पर बैठकर
भक्ति करनी थी
लेकिन जब सतलुज के पानी से भाप उठी
जब काज़ी नज़रुल इस्लाम की ज़बान रुकी
जब लड़कों के पास देखा 'जेम्स बॉण्ड'
तो मैं कह उठा, चल भाई सन्त (सन्धू)[1]
नीचे धरती पर चलें
पापों का बोझ तो बढ़ता जाता है
और अब हम आये हैं
यह लो हमारा ज़फ़रनामा
हमारे हिस्से की कटार हमें दे दो
हमारा पेट हाज़िर है...

1. पाश के कवि मित्र

रात से

उदास बाजरा, सिर झुकाये खड़ा है
तारे भी बात नहीं करते
रात को क्या हुआ है...
ऐ रात, तू मेरे लिए उदास न हो
तू मेरी देनदार नहीं
रहने दे, इस तरह न सोच
जुगाली करते पशु कितने चुप हैं
और गाँव की स्निग्ध फ़िज़ाँ कितनी शान्त है
रहने दे, रात, तू ऐसे न सोच, तू मेरी आँखों में झाँक
ये उस बाँके यार को अब कभी न देखेंगी
जिसकी आज अख़बारों ने बात की है...
रात! तेरा उस दिन का वह रंग कहाँ है?
जब वह पहाड़ी चो के जल की तरह
जल्द-जल्द आया था
चाँदनी की लौ में पहले हम पढ़े
फिर चोरों की तरह बहस की
और फिर झगड़ पड़े थे
रात! तू तब तो ख़ुश थी
जब हम लड़ते थे
तू अब क्यों उदास है
जब हम बिछड़ गये हैं
रात, तुझे जानेवाले की क़सम
तेरा यों उदास होना बनता नहीं है
मैं तेरा देनदार हूँ
तू मेरी देनदार नहीं
रात, तू मुझे बधाई दे

मैं इन खेतों को बधाई देता हूँ
खेतों को सब पता है
आदमी का लहू कहाँ गिरता है
और लहू का मोल क्या होता है
ये खेत सब जानते हैं
इसलिए ऐ रात!
तू मेरी आँखों में देख
और मैं भविष्य की आँखों में देखता हूँ।

आप हैरान न हों

आप हैरान होते हैं
और मुझसे मेरी दृढ़ता की वजह पूछते हैं?
मेरा अब कहना नहीं बनता –
भला क्यों कोई मरुस्थलों में जलता है
और किसलिए तेसा पकड़कर
पर्वतों से नहर निकालता है?
आप बेख़ौफ़ होकर आयें
और एक बेवफ़ा प्रेमिका की तरह
मुहब्बत का हमें अंजाम दे जायें
देखो – आपके 'दिलफ़रेब' हुस्न को निहारते
मैंने 216 घण्टे जागकर बिताये हैं
और बिजली की नंगी तार पर हाथ रखा है
और चाश्नी में लिपटे अंग
चींटियों की बाँबी पर फेंक दिये हैं
आप सोचते होंगे
अब मैं गिड़गिड़ाऊँगा
हम भिखारी नहीं
हमें तो ऐसे ही मर जाने का शौक़ होता है
हम आँखों में आँखें डालकर देखते हैं
हम प्रेमिका के पैर नहीं पकड़ते
आप हैरान न हों
मेरा तो कहना बनता नहीं
कि अब वह ऋतु आनेवाली है
जिसमें सरफ़रोशी के वृक्षों पर फूल उगते हैं
आपकी चर्खड़ी के अर्थ भी धुन दिये जाते हैं।

अर्थों का अपमान

आपने जानबूझकर अर्थों का अपमान किया है
आवारा शब्दों का इल्ज़ाम
अब किसे देंगे?
मुझसे यह वृक्ष पूछते हैं
कि उस सूरज को क्या कहें
जोकि गर्म न हो
जिसका रंग लाल न हो!
मैं वृक्षों की ओर देखता हूँ
हवा के रंग गिनता हूँ
और ऋतु का माप लेता हूँ
और मुझसे फिर सूरज को निर्दोष नहीं कहा जाता
मैं सूरज के लिए
गुस्ताख़ शब्दों को स्वयंवर में बिठाता हूँ
आप समझेंगे
मैंने चोटी पर खड़े हो खड्ड में छलाँग लगायी है
असल बात दूसरी है
मैंने तो खड्डों के अर्थ बदले हैं
हवा को पींग माना है
और पर्वत को और ऊँची छलाँग लगाने की जगह माना है
मैंने आपके लिए आत्महत्या के अर्थ बदले हैं
मेरे साथी,
आपके लिए ज़िन्दगी के अर्थ बदलेंगे
आपने 'गर मरते वक़्त
ज़िन्दगी को जान भी लिया

आपको कौन मानेगा?
आपको कौन छोड़ेगा
जिन्होंने जानबूझकर
अर्थों का अपमान किया है।

क़ातिल

यह भी सिद्ध हो चुका है कि
इन्सानी शक्ल सिर्फ़ चमचे-जैसी ही नहीं होती
बल्कि दोनों तलवारें पकड़े लाल आँखोंवाली
कुछ मूर्तियाँ भी मोम की होती हैं
जिन्हें हल्का-सा सेंक देकर भी कोई
जैसे साँचे में चाहे ढाल सकता है

लेकिन ग़द्दारी की सज़ा तो सिर्फ़ एक ही होती है

मैं रोने वाला नहीं, कवि हूँ
किस तरह चुप रह सकता हूँ
मैं कब मुकरता हूँ कि मैं क़त्ल नहीं करता
मैं क़ातिल हूँ उनका जो इन्सानियत को क़त्ल करते हैं
हक़ को क़त्ल करते हैं
सच को क़त्ल करते हैं
देखो, इंजीनियरो! डॉक्टरो! अध्यापको!
अपने छिले हुए घुटनों को देखो
जो कुछ सफ़ेद या नीली दहलीज़ों पर
टेकने से छिले हैं
अपने चेहरे की ओर देखो
जो केवल एक याचना का बिम्ब है
हर छिमाही दफ़्तरों में रोटी के लिए
गिड़गिड़ाता बिम्ब!
हम भिखारियों की कोई सुधरी हुई क़िस्म हैं
लेकिन फिर भी हर दर से हमें दुत्कार दिया जाता है
अपनी ही नज़रों को अपनी आँखों से मिलाओ

और देखो, क्या यह सामना कर सकती हैं?
मुझे देशद्रोही भी कहा जा सकता है
लेकिन मैं सच कहता हूँ, यह देश अभी मेरा नहीं है
यहाँ के जवानों या किसानों का नहीं है
यह तो केवल कुछ ही 'आदमियों' का है
और हम अभी आदमी नहीं हैं, बड़े निरीह पशु हैं
हमारे जिस्म में जोंकों ने नहीं
पालतू मगरमच्छों ने गहरे दाँत गड़ाये हैं
उठो, अपने घर के धुओं!
ख़ाली चूल्हों की ओर देखकर उठो
उठो काम करनेवाले मज़दूरो, उठो!

ख़ेमों पर लाल झण्डे लहराकर
बैठने से कुछ न होगा
इन्हें अपने रक्त की रंगत दो
(हड़तालें तो मोर्चे के लिए सिर्फ़ कसरत होती हैं)
उठो मेरे बच्चो, विद्यार्थियो, जवानो, उठो!
देखो मैं अभी मरा नहीं हूँ
यह एक अलग बात है कि मुझे और मेरे एक बच्चे को
जो आपका भी भाई था
हक़ के एवज में एक जरनैली सड़क[1] के किनारे
गोलियों के पुरस्कार से पुरस्कृत किया गया है
आपने भी यह 'बड़ी भारी
पुलिस मुठभेड़' पढ़ी होगी
और आपने देखा है कि राजनीतिक दल
दूर-दूर से मरियल कुत्ते की तरह
पल दो पल न्यायिक जाँच के लिए भौंके
और यहाँ का क़ानून सिक्के का है
जो सिर्फ़ आग से ही ढल सकता है
भौंकने से नहीं

1. जी.टी. रोड

क्यों झिझकते हो, आओ उठें...
मेरी ओर देखो, मैं अभी ज़िन्दा हूँ
लहरों की तरह बढ़ें
इन मगरमच्छों के दाँत तोड़ डालें
लौट जायें
फिर उठें, और जो इन मगरमच्छों की रक्षा करता है
हुक्म देने के लिए
उस पिलपिले चेहरे का मुँह खुलने से पहले
उसमें बन्दूक़ की नाली ठोंक दे!

काग़ज़ी शेरों के नाम

आप उत्तर हैं न दक्षिण
तीर न तलवार
और यह जो सीलनवाली कच्ची दीवार है
आप इसके भीतर के दो सूराख़ हैं
जिनमें से दीवार के पीछे का शैतान
अपना डिफ़ेंस देखता है...
आप गेहूँ की कटाई में
गिरे हुए चने हैं
और मिट्टी ने आपका भी हिसाब करना है
हमारे लिए तो आप एक ठोकर भी नहीं
शायद
आपको अपने अस्तित्व का कुछ भ्रम है
मैं बताता हूँ कि आप क्या हैं?
आप कीकर के बीज हैं
या टूटी हुई टोकरी
जो कुछ भी उठाने में अक्षम है
आप यह एयरगन
कन्धे पर लटकाये फिरते हैं
आप क़त्ल नहीं कर सकते
सिर्फ़ सात-इक्यावन के मुद्दई हो सकते हैं।

खुला ख़त

प्रेमिकाओं को पत्र लिखनेवालो!
यदि आपकी क़लम की नोंक बाँझ है
तो काग़ज़ों का गर्भपात न करो
सितारों की ओर देख क्रान्ति लाने की
सलाह देनेवालो!
क्रान्ति जब आयेगी
आपको भी तारे दिखा देगी
बन्दूक़ोंवालो!
या तो बन्दूक़ों का मुँह दुश्मन की ओर कर दो
या फिर ख़ुद अपनी ओर
क्रान्ति कोई दावत नहीं, नुमायश नहीं
मैदान में बहती नदी नहीं
वर्गों की, रुचियों की दरिन्दगी भरी भिड़न्त है
मारना है, मरना है
और मौत को ख़त्म करना है

आज वारिस शाह की लाश
कँटीली नागफनी बनकर
समाज के बदन पर उग आयी है –
उससे कहो कि
यह युग वारिस का युग नहीं
वियतनाम का युग है
हर क्षेत्र में
हक़ों के संग्राम का युग है।

वक़्त आ गया है

अब वक़्त आ गया है
कि आपसी रिश्ते का इक़बाल करें
और विचारों की लड़ाई
मच्छरदानी से बाहर निकलकर लड़ें
और प्रत्येक गिले की शर्म
सामने होकर झेलें

वक़्त आ गया है
कि अब उस लड़की को
जो प्रेमिका बनने से पहले ही
पत्नी बन गयी, बहन कह दें
लहू के रिश्ते का व्याकरण बदलें
और मित्रों की नयी पहचान करें
अपनी-अपनी रक्त की नदी को तैरकर पार करें
सूर्य को बदनामी से बचाने के लिए
हो सके तो रात-भर
ख़ुद जलें।

देशभक्त

(प्यारे चन्दन को समर्पित)

एक अफ़्रीकी सिर
चेग्वेरा को नमस्कार करता है
आरती कहीं भी उतारी जा सकती है...
अन्तरिक्ष में... पृथ्वी पर
क्यूबा में... बंगाल में
समय स्वतंत्र रूप में कोई चीज़ नहीं
समय को अर्थ देने के लिए
पल जिये जाते हैं, वर्ष बिताये जाते हैं...
भिवण्डी और श्रीकाकुलम् में फ़र्क़ समझा जाता है
मैं सूर्य से मुकरा, घास से मुकरा
कुर्सी से, मेज़ से
और इसीलिए मैंने लॉन की धूप में बैठकर
चाय नहीं पी
बन्द कमरे की दीवारों पर फ़ायर किये हैं
... ...
यह भारत है –
जो छोटे-से ग्लोब पर एशिया की पूँछ बनकर
लटका है
जिसकी शक्ल पतंगे-जैसी है
और जो पतंगे की तरह जल जाने के लिए व्याकुल है
और यह पंजाब है –
जहाँ न कोमल दूब बिछी है
न फूलों-भरे वृक्ष
चैत आता है, लेकिन उसका रंग शोख नहीं होता...
उदास शामों के साथ टकराकर

ज़िन्दगी का सच कई बार गुज़रा है
लेकिन हर बार सहनशीलता का मुखौटा पहनने से पहले
मैं हर दिशा के क्षितिज के साथ टकरा गया हूँ
चाँद जब गोवा के रंगीन तटों पर
या कश्मीर की जीवन्त वादी में
चारों ओर सुस्ताया पड़ा होता है
तब वे पल होते हैं
जब मैं ऊँचे हिमालयवाली
अपनी पितृभूमि पर बहुत मान करता हूँ
जिसने हम पहाड़ी पत्थरों-जैसे अनगिन लोगों को पैदा किया
और पत्थरों की तरह ही जीने के लिए छोड़ दिया
और तब मुझे वह ढिठाई
जिसका नाम ज़िन्दगी है
रूठी हुए प्रेमिका की तरह प्यारी लगती है
और मुझे लाज आती है
कि मैं घोंघे की तरह बन्द हूँ
जबकि मुझे अमीबा की तरह फैलना चाहिए।

समय कोई कुत्ता नहीं

फ़्रण्टियर न सही, ट्रिब्यून पढ़ें
कलकत्ता नहीं, ढाका की बात करें
आर्गेनाइज़र और पंजाब केसरी
की कतरनें लायें
और मुझे बतायें
ये चीलें किधर जा रही हैं?
कौन मरा है?
समय कोई कुत्ता नहीं
कि ज़ंजीर पकड़कर जिधर चाहे खींच लें
आप कहते हैं
माओ यह कहता है, माओ वह कहता है
मैं पूछता हूँ, माओ कौन है कहनेवाला?
शब्द बन्धक नहीं हैं
समय ख़ुद बात करता है
पल गूंगे नहीं हैं

आप बैठें रैम्बल में
या प्याला चाय का रेहड़ी से पियें
सच बोलें या झूठ –
कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता
चाहे चुप की लाश भी छलाँग से लाँघ जायें
और ऐ हकूमत!
अपनी पुलिस से पूछकर यह बता
कि सींखचों के भीतर मैं क़ैद हूँ

या सींखचों के बाहर यह सिपाही?
सच ए. आई. आर.[1] की रखैल नहीं
समय कोई कुत्ता नहीं।

1. ऑल इण्डिया रेडियो

जब बग़ावत खौलती है

अँधेरी, काली अँधेरी रातों में
जब एक पल दूसरे पल से सहमता है, सिहरता है
चौबारों की रोशनी तब,
खिड़कियों से कूदकर आत्महत्या कर लेती है
इन शान्त रातों के गर्भ में
जब बग़ावत खौलती है,
रोशनी, बेरोशनी भी क़त्ल हो सकता हूँ मैं।

यह कैसी मुहब्बत है दोस्तो

सघन बदबू में दीवारों पर लगी काई
और छत पर लगा मकड़ी का जाला देखकर
प्रेमिका का चेहरा बहुत याद आता है
यह कैसी मुहब्बत है दोस्तो?
कवि क़ातिल हैं, किसान डाकू हैं
ताज़िराते हिन्द का फ़रमान है –
गेहूँ खेतों में सड़ने दें
नज़्में इतिहास न बन पायें
शब्दों का गला घोंट दो
कल तक यह दलील बहुत दिलचस्प थी
इस तीन रंग की जिल्द पर
नया काग़ज़ चढ़ा लें –
लेकिन एवरेस्ट पर चढ़ना
मुझे अब दिलचस्प नहीं लगता
मैं हालात से समझौता कर
साँस घसीटना नहीं चाहता
मेरे यारो!
मुझे इस क़त्लेआम में शामिल हो जाने दो

सच

आपके मानने या न मानने से
सच को कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता
इन दुखते हुए अंगों पर सच ने एक जून भुगती है
और हर सच जून भुगतने के बाद
युग में बदल जाता है
और यह युग अब खेतों और मिलों में ही नहीं
सेना की पाँतों में भी विचर रहा है
कल जब यह युग
लाल क़िले पर परिणाम का ताज पहने
समय की सलामी लेगा
तो आपको सच के असली अर्थ समझ आयेंगे
अब हमारी उपद्रवी जाति को
चाहे इस युग की फ़ितरत कह लें
यह कह देना
कि झोंपड़ियों में फैला सच
कोई चीज़ नहीं
कितना सच है?
आपके मानने या न मानने से
सच को कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता।

लोहा

आप लोहे की कार का आनन्द लेते हो
मेरे पास लोहे की बन्दूक़ है

मैंने लोहा खाया है
आप लोहे की बात करते हो
लोहा जब पिघलता है
तो भाप नहीं निकलती
जब कुठाली उठानेवालों के दिलों से
भाप निकलती है
तो लोहा पिघल जाता है
पिघले हुए लोहे को
किसी भी आकार में
ढाला जा सकता है

कुठाली में देश की तक़दीर ढली होती है
यह मेरी बन्दूक़
आपके बैंकों के सेफ़;
और पहाड़ों को उल्टानेवाली मशीनें,
सब लोहे के हैं
शहर से वीराने तक हर फ़र्क़
बहन से वेश्या तक हर एहसास
मालिक से मुलाज़िम तक हर रिश्ता
बिल से क़ानून तक हर सफ़र
शोषणतंत्र से इन्क़लाब तक हर इतिहास
जंगल, कोठरियों व झोंपड़ियों से लेकर इण्टैरोगेशन तक
हर मुक़ाम सब लोहे के हैं

लोहे ने बड़ी देर इन्तज़ार किया है
कि लोहे पर निर्भर लोग
लोहे की पत्तियाँ खाकर
खुदकशी करना छोड़ दें
मशीनों में फँसकर फूस की तरह उड़नेवाले
लावारिसों की बीवियाँ
लोहे की कुर्सियों पर बैठे वारिसों के पास
कपड़े तक खुद उतारने के लिए मज़बूर न हों

लेकिन आख़िर लोहे को
पिस्तौलों, बन्दूक़ों और बमों की
शक्ल लेनी पड़ी है
आप लोहे की चमक में चुँधियाकर
अपनी बेटी को बीवी समझ सकते हैं,
(लेकिन) मैं लोहे की आँख से
दोस्तों के मुखौटे पहने दुश्मन
भी पहचान सकता हूँ
क्योंकि मैंने लोहा खाया है
आप लोहे की बात करते हो।

भारत

भारत –
मेरे सम्मान का सबसे महान शब्द
जहाँ कहीं भी प्रयोग किया जाये
बाक़ी सभी शब्द अर्थहीन हो जाते हैं

इस शब्द के अर्थ
खेतों के उन बेटों में हैं
जो आज भी वृक्षों की परछाइयों से
वक़्त मापते हैं
उनके पास, सिवाय पेट के, कोई समस्या नहीं
और वह भूख लगने पर
अपने अंग भी चबा सकते हैं
उनके लिए ज़िन्दगी एक परम्परा है
और मौत के अर्थ हैं मुक्ति
जब भी कोई समूचे भारत की
'राष्ट्रीय एकता' की बात करता है
तो मेरा दिल चाहता है –
उसकी टोपी हवा में उछाल दूँ
उसे बताऊँ
कि भारत के अर्थ
किसी दुष्यन्त से सम्बन्धित नहीं
वरन खेतों में दायर हैं
जहाँ अन्न उगता है
जहाँ सेंध लगती है...

कामरेड से बातचीत-5

अख़बार तुम्हें कभी-कभी मिलता है कामरेड?
तुम इन टुकड़ख़ोर ख़बरों का बिलकुल सच न मानना
पिछले वर्ष जो डूबकर मरी थी गाँव के पोखर में
वह माँ नहीं थी
यों ही नीली छत से ईंट उखड़कर जा गिरी थी
माँ तो पहले 'रेड' पर ही
गोर्की के नावल में तैरने की कोशिश करती हुई
पुलिस की पहुँच से भाग निकली थी
वह अब भी कभी तो नावल के किनारों को
घूरती है
और कभी अपनी ही आशिष की तरह खुरने लगती है

और पिछले दिनों जिस शायर के
सुरक्षित पार्टी में मिल जाने की ख़बर थी
वह मैं नहीं था, बाहर की दीवार के पास डेक वृक्ष था
जिससे बुरी आत्माएँ पुलिस की वर्दी पहन
उतरना और चढ़ना सीख गयी थीं
मैं तो उस ख़बर के छपने से बहुत पहले ही
जब शब्दों में रात उतर रही थी
और अँधेरे के नाग नामों पर कुण्डली मार रहे थे
मैं शब्द 'पार्टी' की बची-खुची संवेदना चुराकर
फिसल गया था चोरी से
मनुष्य के हो-हल्ले में
जब मेरे ही क़दम सुन रहे थे मुझे
प्रेम-कविताओं की तरह
मैं उस डूब रही संवेदना को सावधानी से

कव्वों के अण्डों में रख आया था

वैसे मैंने साधुसिंह और जीरवी[1] के पास
कई बार ख़बरों का गिला किया
उनका कहना है कि ख़बरों का लकवा
उन्हें अपने पैरों पर चलने नहीं देता
तुम्हारे पास पहुँचने के लिए
वे हमारी मौत की बैसाखी माँगती हैं
इनका सच मानते तो
हम तुम्हें कई बार रो चुके होते
मैं हर बार झपट की ख़बर पढ़कर
माँ से कहता हूँ –
वह तुम नहीं, तुम्हारे नाम का कोई और योद्धा था
माँ को व्याकरण की बारीकी का पता नहीं न
बुढ़ापे की सर्द मासूमियत में ठिठुरती हुई
वह व्यक्तिवाचक संज्ञा को जातिवाचक और जातिवाचक को
समूहवाचक समझ लेती है
उसके लिए जब भी नाम पर गोली चलती है
कोई जाति या किसी भाव का क़त्ल होता है
कामरेड, माँ वैसे ही पगलायी-सी है
हम दोनों और ख़बरें उसे बदल नहीं सके
वह तुम्हें देर से आने के लिए
घर की किसी भी चीज़ से
या पूरे घर से पीटेगी और बाद में
तुम्हारे मुँह में सूखा हुआ दूध ठूँस देगी!

कामरेड से बातचीत-6

घर और ख़बरों के बावजूद
मैं हाज़िर हूँ कामरेड!
जैसे कोई आला झाँकता है उजड़े घर के मलबे से
जले हुए प्रेम-पत्र में जैसे कोई शब्द बच जाता है
जैसे परदेस कमाई करने गये की
बन्द बक्से में लाश लौटती है
जैसे देर से गुम बेटे के सन्दूक़ से करधनी मिल जाये
गर्भ के गिरने से जैसे
किसी के मन में कँवारापन लौट आये
या गीत मुँह पर न आये – गीत का जैसे
भाव तिर आये

मैं कुछ इस तरह बच आया
मायाधारियों की पुलिस से
अपने मध्यवर्गीय पाखण्डी दम्भ से
कहाँ है लाल पिस्तौल तुम्हारा कामरेड!
इसे मेरी बुर्जुआ उदासी पर आज़माओ

कवि हूँ न?
मेरे सीने में हर दिशा पश्चिम है
जिसमें डूब जाते हैं बड़बोले सूर्य
ऐसे ही कभी-कभी जब ज़्यादा बोले
पता नहीं चलता कब असमय छिप जाता है
वर्ग-घृणा का सूर्य
और मेरा समय की बूढ़ी हुई मुस्कान को
भींचने का मन होता है

चाहने लगता हूँ पल के पल
अचानक कहीं से आये न्यूटन का वह दरवेश डायमण्ड
फिर एक बार फेंके जलती मोमबत्ती

मेरे जेहन के खुले दराज़ में
इससे पहले कि मेरे ज़ेहन में मौजूद
तमाम अधूरी सूचनाएँ
किसी सिद्धान्त में बदलें, उन्हें जला दें
उनके न जलने में बहुत ख़तरा है

कवि हूँ न?
अकारण ही घिर आता है दिल
वैसे भला क्या है
गूंगे पत्थरों में जज़्ब हो रही शाम
गधे के साज में हिलती ईंटों का रगड़-संगीत –
झड़ने से बच गये पतझड़ी पत्तों पर
टिकी हुई मटमैली धूप
या भला क्या है?
धरती की गोद में यह प्यारा संसार
चित पहलवान की आँखों में घूमते अखाड़े-जैसा
जो ख़ामख़ाह रिस आता है
मेरी मरुस्थली निगाहों में

सोचें तो क्या है कामरेड!
वैसे भला क्या है कामरेड!

कुछ फुटकल कविताएँ

... ...

तब भी मेरे शब्द रक्त के थे
तब भी मेरा रक्त लोहे का था
जब मैं जलते फूलों में
घिरा पड़ा था –
फिर जब मैं जल रहे फूलों से बाहर आकर
तलवारों के जंगल में घुसा
तो भी मेरे शब्द रक्त के थे
तो भी मेरा रक्त लोहे का था
और अब मेरे सफ़र में
जलते फूलों की गन्ध नहीं
पिघले हुए फ़ौलाद की गन्ध आती है
और मेरा सफ़र
मेरा फूल से रक्त तक का सफ़र
एक इतिहास है
शब्द से आवाज़ तक का इतिहास –
और अब मुझे
होंठों पर किसी भी ख़ूबसूरती का ज़िक्र लाने से पहले
तलवारों के कई जंगलों से
गुज़रना पड़ता है।

... ...

इससे पहले कि
रविवार रम जाये तुम्हारी हड्डियों में
सप्ताह के सारे दिन बनकर

मेरी क़ौम, आ हम सुबह की
व्याकुलता को पी जायें

इससे पहले कि
लड़की जमा लड़का बराबर बच्चा हो
मेरी क़ौम, आ हम रिश्ते की तरह
ज़रूरतों की संस्था में घुल जायें
इससे पहले कि यू.एन.ओ. का आदर
कुतरकर सरहदों को चरा दिया जाये
मेरी क़ौम, आ हम ख़ानाबदोशी
का प्रस्ताव पास करवा लें।

... ...

जिन्होंने उम्र-भर तलवार का गीत गाया है
उनके शब्द लहू के होते हैं
लहू लोहे का होता है
जो मौत के किनारे जीते हैं
उनकी मौत से ज़िन्दगी का सफ़र शुरू होता है
जिनका लहू और पसीना मिट्टी में गिर जाता है
वे मिट्टी में दबकर उग आते हैं।

... ...

धुँधली और मटमैली-सी चाँदनी – किसी बेगार करने वाले
की तरह उदासी में डूबी शहर की क़द्दावर इमारतों
से सहमी-सहमी आयी है –
यह दिशाओं की सच्चाई भूलती है
मेरे में सुकरात भी है
जिस सूर्य की धूप मुझे विवर्जित है
मैं उसकी छाया से भी इनकार कर दूँगा
मैं हर ख़ाली सुराही तोड़ दूँगा।

... ...

लौटा दो मेरे पंख यह तो मौत-जैसी बात है
बुत होकर रह जाना और चौकों में गाड़े जाना –
मैं धुर से सिरजनहार हूँ
मैं जब भी जन्मता हूँ
जीने की सौगन्ध लेकर जन्मता हूँ

... ...

लौटा दो मेरे पंख यह तो मौत-जैसी बात है।

(पाश की ये कुछ कविताएँ उनके कॉलेज के दिनों की नोटबुक से मिलीं। इन्हें पहली बार सितम्बर 1994 में पाश मेमोरियल अन्तरराष्ट्रीय ट्रस्ट की ओर से प्रकाशित पाश-काव्य-1 में संकलित किया गया। वास्तव में इनमें से कुछ अधूरी-पूरी कविताएँ उनकी कविताओं के आरम्भिक प्रारूप-जैसी हैं।)

• • •

परिकल्पना से प्रकाशित अन्य कविता संकलन

- **जब मैं जड़ों के बीच रहता हूँ**/पाब्लो नेरूदा
- **आँखें दुनिया की तरफ़ देखती हैं**/लैंग्सटन ह्यूज़
- **इकहत्तर कविताएँ और तीस छोटी कहानियाँ – बेर्टोल्ट ब्रेष्ट** (मूल जर्मन से अनुवाद : मोहन थपलियाल)
- **उम्मीद-ए-सहर की बात सुनो** (फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ के संस्मरण और चुनिन्दा शायरी, सम्पादक: शकील सिद्दीक़ी)
- **माओ त्से-तुङ की कविताएँ** (राजनीतिक पृष्ठभूमि सहित विस्तृत टिप्पणियाँ एवं अनुवाद : सत्यव्रत)
- **मध्यवर्ग का शोकगीत**/हान्स माग्नुस एन्त्सेन्सबर्गर
- **जेल डायरी**/हो ची मिन्ह
- **ओस की बूँदें और लाल गुलाब**/होसे मारिया सिसों
- **इन्तिफ़ादा** : फ़लस्तीनी कविताएँ/स. रामकृष्ण पाण्डेय
- **लोहू और इस्पात से फूटता गुलाब** : फ़लस्तीनी कविताएँ (द्विभाषी संकलन) **A Rose Breaking Out of Steel and Blood** (Palestinian Poems)
- **समर तो शेष है...** (इप्टा के दौर से आज तक के प्रतिनिधि क्रान्तिकारी समूहगीतों का संकलन)
- **पाठान्तर**/विष्णु खरे
- **लालटेन जलाना** (चुनी हुई कविताएँ)/विष्णु खरे
- **दिन भौंहें चढ़ाता है**/मलय
- **देखते न देखते**/मलय
- **असम्भव की आँच**/मलय
- **इच्छा की दूब**/मलय
- **वाचाल दायरों से दूर**/मलय

- **देश एक राग है**/भगवत रावत
- **ईश्वर को मोक्ष**/नीलाभ
- **कविता का जीवन**/असद ज़ैदी
- **बहनें और अन्य कविताएँ**/असद ज़ैदी
- **सामान की तलाश**/असद ज़ैदी
- **कोहेकाफ़ पर संगीत-साधना**/शशिप्रकाश
- **पतझड़ का स्थापत्य**/शशिप्रकाश
- **सात भाइयों के बीच चम्पा**/कात्यायनी
- **इस पौरुषपूर्ण समय में**/कात्यायनी
- **जादू नहीं कविता**/कात्यायनी
- **फ़ुटपाथ पर कुर्सी**/कात्यायनी
- **राख-अँधेरे की बारिश में**/कात्यायनी
- **यह मुखौटा किसका है**/विमल कुमार
- **यह जो वक़्त है**/कपिलेश भोज
- **बहुत नर्म चादर थी जल से बुनी**/नरेश चन्द्रकर
- **इस ढलान पर**/प्रमोद कुमार
- **तो**/शैलेय
- **पानी है तो फूटेगा**/राजेश सकलानी
- **सवालों का कारख़ाना**/सरिता तिवारी (नेपाली कविताएँ)

हमारे लहू को आदत है
मौसम नहीं देखता, महफ़िल नहीं देखता
ज़िन्दगी के जश्न शुरू कर लेता है
सूली के गीत छेड़ देता है

शब्द हैं कि पत्थरों पर बह-बहकर घिस जाते हैं
लहू है कि तब भी गाता है